मार्च, 2022

I.S.S.N. 2457-0486

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री अविनाश शुक्ला

श्री असलम खान

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह

श्री जसवन्त सिंह

ISSN-2457-0486

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2022 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0486

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

मार्च, 2022 अंक - 3

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

(2022) 1 दा. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on

Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

क्या अभियुक्त द्‌वारा सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किए जाने और उसके विरुद्ध आरोपों को विरचित किए जाने के पश्चात् न्यायाधीश द्‌वारा उससे उसके दोषी होने के संबंध में प्रश्न किए जाने पर केवल एकमात्र शब्द 'हां' में उत्तर दिए जाने को अभियुक्त द्‌वारा दोषी होने का अभिवाक् मानकर उसके आधार पर उसकी दोषसिद्धि करके उस पर दंडादेश अधिरोपित किया जा सकता है । इसी प्रश्न पर विचार करते हुए **रसीन बाबू के. एम.** बनाम **केरल राज्य** (2022) 1 दा. नि. प. 301 वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अभियुक्त ने आरोप विरचित किए जाने के समय अपने दोषी न होने का अभिवाक् किया था और न्यायालय द्‌वारा आरोप विरचित हो जाने के पश्चात् विद्‌वान् न्यायाधीश द्‌वारा उसके दोषी होने के संबंध में प्रश्न किए जाने पर केवल एकमात्र शब्द 'हां' में उत्तर दिए जाने को अभियुक्त द्‌वारा दोषी होने का अभिवाक् नहीं माना जा सकता और उसके आधार पर उसकी दोषसिद्धि तथा उसके विरुद्ध दंडादेश पारित नहीं किया जा सकता ।

क्या सक्षम न्यायालय द्‌वारा कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कर दिए जाने के पश्चात् समान तथ्यों को आधार बनाकर कोई परिवाद फाइल किया जा सकता है और उसके आधार पर द्‌वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर की जा सकती है । इसी प्रश्न पर विचार करते हुए **वी. एस. अच्युतानंदन** बनाम **केरल राज्य** (2022) 1 दा. नि. प. 316 वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय द्‌वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सभी अभिलेखों के परिशीलन के पश्चात् यह पाया गया कि वर्तमान परिवाद और पूर्व में अभिखंडित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथन सारवान् रूप से एक समान हैं और उनमें केवल ब्यौरों संबंधी अंतर है जो कि सारवान् प्रतीत नहीं होता । ऐसी परिस्थिति में यदि याची के अनुरोध को स्वीकार किया जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि समान तथ्यों के आधार पर एक द्‌वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर की जाएगी, जो कि विधिपूर्ण नहीं है ।

क्या ऐसे किसी मामले में, जिसमें एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी बाल साक्षी है तथा उसके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य में अनेक प्रकार की विसंगतियां विद्यमान हैं और उसके साक्ष्य समर्थन में कोई अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, उक्त बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया जा सकता है । ऐसे ही प्रश्न पर विचार करते हुए **पी. बी. कोहली** बनाम **केशव वर्मा और अन्य** (2022) 1 दा. नि. प. 335 वाले मामले में जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि उपरोक्त के अलावा बाल साक्षी, चूंकि अपने ननिहाल में निवास कर रही है इसलिए उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना भी विद्यमान है । अतः, मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया दोषमुक्ति का निर्णय उचित प्रतीत होता है ।

इस अंक में, निर्णयों के हिन्दी पाठ और शीर्ष टिप्पण पाठकों के ज्ञान के लिए प्रकाशित किए जा रहे हैं । यह अंक विद्यार्थियों, विधि-वेत्ताओं, न्यायाधीशों और आम-जनता के लिए बहुत उपयोगी है । इस अंक में केन्द्रीय अधिनियम ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

पुंडरीक शर्मा
संपादक

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

मार्च, 2022

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आर. के. गोसाईं **बनाम** राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार और अन्य	356
एच. कलीलुद्दीन कुंजु **बनाम** केरल राज्य	287
केशव कुमार कतेन्द्र **बनाम** रेनाल्ड पीटर	326
पप्पू **उर्फ** दयाराम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	390
पी. बी. कोहली **बनाम** केशव वर्मा और अन्य	335
मंगू सिंह **बनाम** राजस्थान राज्य	409
रसीन बाबू के. एम. **बनाम** केरल राज्य	301
राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार) **बनाम** योगेश कोचर **उर्फ** बबलू	372
वी. एस. अच्युतानंदन **बनाम** केरल राज्य	316

संसद् के अधिनियम

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 का हिंदी में प्राधिकृत पाठ	1– 20

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 154 – समान तथ्यों के आधार पर द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर किए जाने की वैधता को चुनौती दिया जाना – अभियुक्तों द्वारा अभिकथित रूप से मिथ्या दस्तावेज तैयार करके सरकारी संपत्ति पर कब्जा किया जाना – अन्य सह-अभियुक्त, जो सरकारी अधिकारी हैं, द्वारा इस अपराध के कारण में सहायता किया जाना और उनके द्वारा प्रतिकूल रिपोर्टों तथा विहित प्रक्रिया का उल्लंघन करके धनीय फायदा प्राप्त किया जाना – याची द्वारा यह दलील प्रस्तुत किया जाना कि वर्तमान परिवाद और पूर्व में अभिखंडित की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की अंतर्वस्तु में अंतर है – उच्च न्यायालय ने सभी अभिलेखों के परिशीलन के पश्चात् यह पाया कि वर्तमान परिवाद और पूर्व में अभिखंडित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथन सारवान् रूप से एक समान हैं और उनमें केवल ब्यौरों संबंधी अंतर है जो कि सारवान् प्रतीत नहीं होता – ऐसी परिस्थिति में यदि याची के अनुरोध को स्वीकार किया जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि समान तथ्यों के आधार पर एक द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर की जाएगी, जो कि विधिपूर्ण नहीं है, अतः याचिका खारिज की गई ।

वी. एस. अच्युतानंदन बनाम **केरल राज्य** 316

– धारा 240 और धारा 241 – अभियुक्त के विरुद्ध आरोपों का विरचित किया जाना – अभियुक्त द्वारा सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किया जाना

पृष्ठ संख्या

और उसके पश्चात् केवल एकमात्र शब्द 'हां' के माध्यम से अपने दोष को स्वीकार करना – अभियुक्त द्वारा दोषी होने के अभिवाक् को प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् उसकी दोषसिद्धि करके उस पर दंड अधिरोपित किया जाना – अभियुक्त द्वारा इस आधार पर दोषसिद्धि के उक्त निर्णय को चुनौती दिया जाना कि उसने सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किया था और उसके द्वारा केवल एकमात्र शब्द 'हां' के माध्यम से अपने दोष को स्वीकार किए जाने को उसके द्वारा प्रस्तुत दोषी होने के अभिवाक् के रूप में नहीं माना जा सकता – न्यायालय द्वारा याची की इस दलील को स्वीकार किया जाना कि एकमात्र शब्द 'हां' को किसी भी परिस्थिति में अभियुक्त द्वारा दोषी होने का अभिवाक् नहीं माना जा सकता तथा उसके आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराते हुए उसके विरुद्ध दंडादेश पारित नहीं किया जा सकता, अत: याचिका मंजूर की जाती है ।

रसीन बाबू के. एम. बनाम **केरल राज्य** 301

– धारा 397 – सेशन न्यायालय द्वारा वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी का विचारण करने के पश्चात् उसे दोषमुक्त करने का आदेश देना – राज्य द्वारा उक्त दोषमुक्ति के निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका फाइल किया जाना – उक्त पुनरीक्षण याचिका में इस प्रभाव का कोई प्रकथन न किया जाना कि वर्तमान पुनरीक्षण याचिका लोक अभियोजक द्वारा राज्य सरकार के निदेश पर फाइल की गई है – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार उसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर अवस्थित किसी निचले दांडिक न्यायालय के

पृष्ठ संख्या

समक्ष किन्हीं कार्यवाहियों के अभिलेख को, अपने किसी निष्कर्ष के सही होने, विधिपूर्ण होने या उसके औचित्य के संबंध में समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकेगा और उसकी परीक्षा कर सकेगा – इसके अतिरिक्त, वह किसी दंडादेश या आदेश, चाहे उसे लेखबद्ध किया गया हो या पारित कर दिया गया हो और ऐसे निचले न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के संबंध में प्रश्न कर सकेगा और ऐसे किसी अभिलेख को मंगाए जाने के समय यह निदेश दे सकेगा कि किसी दंडादेश या आदेश के निष्पादन को निलंबित किया जाए और अभिलेख की परीक्षा के लंबित रहने के दौरान यदि अभियुक्त कारावास में है तो उसे जमानत पर या उसके स्वयं के बंधपत्र पर निर्मुक्त करने का निदेश दे सकेगा – उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार किसी मामले में निचले न्यायालय के अभिलेखों की जांच कर सकता है किन्तु विधिक रूप से यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि ऐसा हस्तक्षेप यदा-कदा ही किया जाना चाहिए – वर्तमान मामले में यह प्रतीत नहीं होता है कि सेशन न्यायालय द्वारा पारित निर्णय इतना त्रुटिपूर्ण है कि उसमें उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित हो, अतः, पुनरीक्षण याचिका खारिज की गई ।

राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार) बनाम **योगेश कोचर** उर्फ **बबलू** 372

– धारा 482 और धारा 436क – कतिपय उपरोक्त जनहित याचिकाओं के माध्यम से यह प्रश्न उठाया जाना कि कोविड-19 महामारी के दौरान अनेकों अस्पतालों को 100% कोविड प्रसुविधा वाले अस्पतालों में संपरिवर्तित

पृष्ठ संख्या

किया गया है और इस कारणवश राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली में अवस्थित तीन कारागारों में ऐसे अन्य रोगियों, जो कोविड-19 से पीड़ित नहीं हैं, को समुचित उपचार उपलब्ध नहीं हो पा रहा है – इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न भी उठाया जाना कि कोविड-19 महामारी को ध्यान में रखते हुए सभी विचारणाधीन कैदियों के मामले को पुनर्विलोकन हेतु विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति के समक्ष विचारार्थ रखा जाए – माननीय उच्चतम न्यायालय ने विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् राज्य को यह निदेश जारी किए कि वह यह सुनिश्चित करे कि कोविड-19 से ग्रस्त रोगियों से भिन्न अन्य रोगियों को उस दशा में समुचित जांच/उपचार प्राप्त होता है, जहां उनके निर्देश अस्पताल को 100% कोविड प्रसुविधा वाले अस्पताल में संपरिवर्तित कर दिया गया है – ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा यह निदेश दिया गया कि इस प्रकार के रोगियों को ऐसे अन्य अस्पतालों के माध्यम से जांच/उपचार उपलब्ध कराया जाना चाहिए जो 100% कोविड प्रसुविधा वाले अस्पताल नहीं हैं – इसके अतिरिक्त, माननीय उच्च न्यायालय द्वारा इस स्थिति को भी स्पष्ट किया गया है कि ऐसे विचारणाधीन कैदियों, जिन पर ऐसे अपराध का आरोप लगाया गया है, जिनके लिए विधि के अधीन मृत्युदंड को एक दंड के रूप में विहित किया गया है, के मामलों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति के समक्ष नहीं रखा जा सकता और बहु अपराधों के आरोपों का सामना करने वाले विचारणाधीन कैदियों को, जिन्होंने निम्नतर अपराध के लिए विहित कारावास के दंडादेश से आधी अवधि के कारावास को पूरा कर लिया है,

पृष्ठ संख्या

यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि उन्हें प्रतिभुओं सहित या रहित या व्यक्तिगत बंधपत्र पर जमानत दी जाए तथा निर्मुक्त किया जाए – उन्हें केवल यह अधिकार प्राप्त होता है कि उनके मामले के संबंध में विचारणाधीन कैदी के संबंध में पुनर्विलोकन समिति द्वारा विचार किया जाएगा और समुचित मूल्यांकन और विश्लेषण के पश्चात् यह निर्णय दिया जाएगा कि उन्हें जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए अथवा नहीं तथा विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति उक्त विचारणाधीन कैदियों को निर्मुक्त करने के लिए आबद्ध नहीं है ।

आर. के. गोसाईं बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार और अन्य** 356

– धारा 482 – याची द्वारा सतर्कता विभाग द्वारा की गई जांच-पड़ताल के आधार पर फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट को अभिखंडित किए जाने का अनुरोध करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान याचिका फाइल किया जाना – सतर्कता विभाग द्वारा जिला लॉटरी कार्यालय, कोल्लम के दो पदधारियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 13(2) और 13(1)(ग) [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 120(ख), 406, 409, 420, 201, 202 और 477(क)] – के अधीन मामला दर्ज करके अन्वेषण आरंभ किया जाना – याची पर यह आरोप लगाया जाना कि उसने मुख्य अभियुक्त के साथ आपराधिक षड्यंत्र करके लेखाओं में मिथ्या प्रविष्टियां कीं तथा इस प्रकार बहुत बड़ी धनराशि का दुर्विनियोग किया – अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपने अन्वेषण के दौरान लगभग 37 साक्षियों की परीक्षा करके उनके कथनों को लेखबद्ध किया

पृष्ठ संख्या

जाना तथा जिला लॉटरी कार्यालय के सभी रजिस्टरों और अभिलेखों का सत्यापन किया जाना – उक्त अन्वेषण के आधार पर सतर्कता विभाग द्वारा एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया जाना, जिसका अवलंब लेते हुए जिला न्यायालय द्वारा मामले का संज्ञान लेकर याची तथा मुख्य अभियुक्त के विरुद्ध समन जारी किया जाना – याची का सुसंगत समय पर जिला लॉटरी कार्यालय का प्रशासनिक प्रमुख होना – याची के विरुद्ध यह आरोप लगाया जाना कि कनिष्ठ अधीक्षक और अपर जिला लॉटरी अधिकारी की जानकारी के बिना अभिलेखों पर हस्ताक्षर किए तथा इस प्रकार उसने मुख्य अभियुक्त के साथ आपराधिक षड्यंत्र करते हुए बहुत बड़ी धनराशि का दुर्विनियोग किया – याची द्वारा उक्त अंतिम रिपोर्ट से व्यथित होकर कतिपय आधारों पर वर्तमान याचिका को इस अनुरोध के साथ फाइल किया जाना कि उक्त अंतिम रिपोर्ट को अभिखंडित किया जाए और उसके विरुद्ध दर्ज मामले को अपास्त किया जाए – उच्च न्यायालय ने मामले के संपूर्ण तथ्यों, परिस्थितियों और अभिलेखों पर विचार करने के पश्चात् याचिका को खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त अंतिम रिपोर्ट सारवान् सामग्री पर आधारित है और वह अभिखंडित किए जाने के लिए दायी नहीं है ।

एच. कलीलुद्दीन कुंजु बनाम **केरल राज्य** 287

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्षय अधिनियम, 1872 की धारा 32] – अपीलार्थी के विरुद्ध हत्या का आरोप लगाया जाना – अभियोजन पक्ष द्वारा मृत्युकालीन कथन और अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि का दावा

पृष्ठ संख्या

किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराया जाना – चुनौती – अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य की समीक्षा किए जाने पर यह पाया जाना कि वर्तमान मामले में दो मृत्युकालीन कथन विद्यमान हैं प्रथम कथन एक स्वतंत्र अभियोजन साक्षी के समक्ष किया गया जिसमें मृतक द्वारा किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं लिया गया और दूसरा कथन मृतक के सगे भाई के समक्ष किया गया जिसमें अभिकथित रूप से अपीलार्थी का नाम लिया गया – विचारण न्यायालय द्वारा प्रथम मृत्युकालीन कथन को परित्यक्त करते हुए दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लिया जाना – इसके अतिरिक्त, अंतिम बार एक साथ जीवित देखे जाने और मृतक को आहत अवस्था में कुएं में पाए जाने में दो दिन का अंतराल होना – अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण अथवा विश्वसनीय और युक्तियुक्त कारण उपलब्ध कराने में असफल रहना कि उक्त दो दिनों के दौरान क्या घटित हुआ – अभिलेख पर किसी अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य या सामग्री का विद्यमान न होना – मामले की सभी परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा अन्य सामग्री की समीक्षा किए जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचारण न्यायालय ने अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत के आधार पर तथा प्रथम मृत्युकालीन कथन की अनदेखी करते हुए दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लेकर की गई दोषसिद्धि त्रुटिपूर्ण है और वर्तमान मामले में अपीलार्थी संदेह के लाभ के लिए हकदार है, अत:, अपील स्वीकार की गई और अपीलार्थी की दोषसिद्धि के निर्णय को उलट दिया गया ।

पप्पू उर्फ **दयाराम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 390

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 – हत्या का अपराध – अभिकथित रूप से अभियुक्त और मृतक के बीच 'बाड़ा' के संबंध में कतिपय विवाद चल रहा था जिसके कारण अभियुक्त द्वारा मृतक के घर जाकर उसे घर से बाहर बुलाया जाना – पीड़ित के बाहर आते ही अभियुक्त द्वारा एक चाकू से उसकी छाती पर बलपूर्वक वार किया जाना – मृतक के भाई द्वारा इस प्रभाव का साक्ष्य दिया जाना कि अभियुक्त ने पीड़ित को घर से बाहर बुलाकर उसकी छाती में अकस्मात् चाकू घोंप दिया – अभियुक्त की गिरफ्तारी के पश्चात् उसकी निशानदेही पर उसके रक्त से सने वस्त्रों तथा अपराध में प्रयुक्त चाकू का अभिग्रहण किया जाना – न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार घटनास्थल से एकत्रित की गई रक्त से सनी मिट्टी, मृतक के वस्त्रों, अभियुक्त के वस्त्रों और अपराध में प्रयुक्त चाकू पर समान 'ओ' समूह का रक्त पाया जाना, जो कि मृतक का है – अभियुक्त द्वारा उसके वस्त्रों तथा उसके निशानदेही पर बरामद चाकू पर विद्यमान रक्त के धब्बों के संबंध में कोई स्पष्टीकरण देने में असफल रहना – स्पष्ट रूप से यह मामला सोच-समझकर की गई हत्या का मामला है और अभियुक्त ने बिना किसी उत्प्रेरण के सोच-समझकर जानते-बूझते हुए पीड़ित पर चाकू से इस प्रकार बलपूर्वक वार किया, जो उसकी मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था, अतः, अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत किया गया यह अभिवाक् कि मामले का अल्पीकरण करके उसके संबंध में दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अधीन विचारण किया जाना चाहिए, कायम रखे जाने योग्य नहीं है, इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर उपलब्ध सभी साक्ष्य यह उपदर्शित करते हैं

पृष्ठ संख्या

कि अभियुक्त ने हत्या के इरादे से पीड़ित पर वार किया और उसकी हत्या की, अतः, सेशन न्यायालय द्वारा पारित दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभियुक्त की दोषसिद्धि के निर्णय में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

मंगू सिंह बनाम **राजस्थान राज्य** 409

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)

– धारा 138 और धारा 139 – चैक का अनादर – परिवादी द्वारा यह आरोप लगाया जाना कि प्रत्यर्थी ने उससे कतिपय धनराशि उधार ली थी और उसका प्रतिदाय करते हुए उसने उसे एक चैक उपलब्ध कराया था जिसे बैंक में प्रस्तुत किए जाने पर बैंक द्वारा उसका अनादर किया गया – परिवादी द्वारा सभी प्रक्रियात्मक कार्यवाहियों को पूरा किया जाना तथा प्रत्यर्थी द्वारा भी उपरोक्त प्रक्रियाओं तथा इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद न उठाया जाना कि उसने परिवादी से धनराशि उधार ली थी – प्रत्यर्थी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा में प्रस्तुत साक्ष्यों के माध्यम से यह साबित करने का प्रयास करना कि उसने लिए गए ऋण का प्रतिदाय कर दिया था और उपरोक्त चैक जिसका अनादर हुआ है वह उसके द्वारा प्रतिभूति के रूप में परिवादी को उपलब्ध कराया गया था – प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों का परिवादी के पक्षकथन से प्रत्यक्ष संबंध न होना और इसके प्रतिकूल उससे यह दर्शित होना कि वे पक्षकारों के बीच किसी भिन्न संव्यवहार से संबद्ध है – विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी/अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अधिनियम

पृष्ठ संख्या

की धारा 139 के अधीन उपलब्ध उपधारणा का खंडन नहीं करता है और इसलिए दोषसिद्धि उचित प्रतीत होती है और उसमें किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

केशव कुमार कतेन्द्र बनाम **रेनाल्ड पीटर** 326

रणबीर दंड संहिता, 1989 (1989 का 12)

– धारा 498क, 306 और 34 – पति और उसके एक मित्र तथा उसके अन्य निकट नातेदारों पर यह आरोप लगाया जाना कि उन्होंने पीड़ित महिला/मृतका से दहेज की मांग की और उस पर शारीरिक रूप से हमला किया तथा उस पर किरोसिन तेल तथा अम्ल को छिड़ककर उसके शरीर को आग लगा दी, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई – वर्तमान मामले में केवल एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथन का विद्यमान होना – उक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का बाल साक्षी होना और उसके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य/कथनों में अनेक प्रकार के विरोधाभासों और विसंगतियों का विद्यमान होना – बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के समर्थन में कोई अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य उपलब्ध न होना – मृतका के अन्य नातेदारों का घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी न होना और उनके द्वारा घटना के संबंध में प्रस्तुत साक्ष्य को केवल अनुश्रुत प्रकृति का साक्ष्य माना जाना – स्वतंत्र साक्षियों द्वारा क्रूरता और दहेज की मांग का समर्थन न किया जाना – मृतका के अप्राप्तवय पुत्र, किराएदार और पड़ोसी द्वारा यह कथन किया जाना कि पति और पत्नी के बीच मधुर संबंध विद्यमान थे – बाल साक्षी, चूंकि अपने ननिहाल में निवास कर रही है इसलिए उसे सिखाए-पढ़ाए जाने

पृष्ठ संख्या

की संभावना का विद्‌यमान होना – मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्‌वारा दिया गया दोषमुक्ति का निर्णय उचित प्रतीत होता है और यह कोई ऐसा आपवादिक मामला नहीं है, जिसमें उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय में कोई हस्तक्षेप करे ।

पी. बी. कोहली बनाम **केशव वर्मा और अन्य** 335

एच. कलीलुद्दीन कुंजु

बनाम

केरल राज्य

(2019 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 2081)

तारीख 15 मार्च, 2021

न्यायमूर्ति सुनील थॉमस

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 – याची द्वारा सतर्कता विभाग द्वारा की गई जांच-पड़ताल के आधार पर फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट को अभिखंडित किए जाने का अनुरोध करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान याचिका फाइल किया जाना – सतर्कता विभाग द्वारा जिला लॉटरी कार्यालय, कोल्लम के दो पदधारियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 13(2) और 13(1)(ग) [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 120(ख), 406, 409, 420, 201, 202 और 477(क)] – के अधीन मामला दर्ज करके अन्वेषण आरंभ किया जाना – याची पर यह आरोप लगाया जाना कि उसने मुख्य अभियुक्त के साथ आपराधिक षड्यंत्र करके लेखाओं में मिथ्या प्रविष्टियां कीं तथा इस प्रकार बहुत बड़ी धनराशि का दुर्विनियोग किया – अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपने अन्वेषण के दौरान लगभग 37 साक्षियों की परीक्षा करके उनके कथनों को लेखबद्ध किया जाना तथा जिला लॉटरी कार्यालय के सभी रजिस्टरों और अभिलेखों का सत्यापन किया जाना – उक्त अन्वेषण के आधार पर सतर्कता विभाग द्वारा एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया जाना, जिसका अवलंब लेते हुए जिला न्यायालय द्वारा मामले का संज्ञान लेकर याची तथा मुख्य अभियुक्त के विरुद्ध समन जारी किया जाना – याची का सुसंगत समय पर जिला लॉटरी कार्यालय का प्रशासनिक प्रमुख होना –

याची के विरुद्ध यह आरोप लगाया जाना कि कनिष्ठ अधीक्षक और अपर जिला लॉटरी अधिकारी की जानकारी के बिना अभिलेखों पर हस्ताक्षर किए तथा इस प्रकार उसने मुख्य अभियुक्त के साथ आपराधिक षड्यंत्र करते हुए बहुत बड़ी धनराशि का दुर्विनियोग किया – याची द्वारा उक्त अंतिम रिपोर्ट से व्यथित होकर कतिपय आधारों पर वर्तमान याचिका को इस अनुरोध के साथ फाइल किया जाना कि उक्त अंतिम रिपोर्ट को अभिखंडित किया जाए और उसके विरुद्ध दर्ज मामले को अपास्त किया जाए – उच्च न्यायालय ने मामले के संपूर्ण तथ्यों, परिस्थितियों और अभिलेखों पर विचार करने के पश्चात् याचिका को खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त अंतिम रिपोर्ट सारवान् सामग्री पर आधारित है और वह अभिखंडित किए जाने के लिए दायी नहीं है ।

वर्तमान याचिका का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि याची तारीख 29 जुलाई, 2011 से 16 फरवरी, 2013 की अवधि के दौरान, जिला लॉटरी कार्यालय, कोल्लम के कार्यालय में जिला लॉटरी अधिकारी के पद पर तैनात था और प्रथम अभियुक्त उसी कार्यालय में रोकड़िया के पद पर तैनात था । इसी दौरान, उनके कार्यालय में सतर्कता विभाग द्वारा की गई तलाशी और उसके पश्चात् किए गए अन्वेषण के अनुसरण में वर्तमान मामला रजिस्टर किया गया था । सतर्कता विभाग द्वारा किए गए अन्वेषण और जांच के पश्चात् प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट, जो प्रदर्श ए-1 के रूप में चिह्नित है, से प्रकट होने वाले आरोपों का सारांश इस प्रकार है कि याची ने वर्ष 2011 से 2012 की अवधि के दौरान प्रथम अभियुक्त के साथ मिलकर एक आपराधिक षड्यंत्र किया ताकि आनुषंगिक नकद पुस्तिका, मुख्य नकद पुस्तिका, खजाना प्रेषण चालान और बैंक प्रतिभू रजिस्टर में खातों को मिथ्या सिद्ध किया जा सके और इसके द्वारा उन्होंने कुल 2,29,325/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया, जिसमें प्रत्यय विक्रय से प्राप्त हुई 52,279/- रुपए की राशि भी सम्मिलित थी । वर्ष 2012 से वर्ष 2013 की अवधि के दौरान लॉटरी अभिकर्ताओं से 81,31,975/- रुपए की कुल राशि एकत्रित की गई थी तथा लॉटरी अभिकर्ताओं को यह वचन दिया गया था कि उन्हें शीघ्र ही लॉटरी टिकट जारी किए जाएंगे । उक्त राशि

का भी दुर्विनियोग किया गया । उसके पश्चात्, 77 लाख रुपए की रकम खजाने में प्रेषित की गई । दोनों अभियुक्तों ने लेखाओं में फेरफार तथा मिथ्या प्रविष्टियां करते हुए कुल 1,30,37,409/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया । तत्पश्चात्, उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि द्वितीय अभियुक्त ने दोनों अभियुक्तों के इस कार्य को उच्चतर अधिकारियों की सूचना में आने से रोकने के लिए इन तथ्यों को छिपाए रखा । सतर्कता विभाग द्वारा फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट के आधार पर मामले का संज्ञान लिया गया और मामले के संबंध में अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई । दोनों अभियुक्तों को समन जारी किए गए । द्वितीय अभियुक्त ने अंतिम रिपोर्ट को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में वर्तमान याचिका फाइल की है । उच्च न्यायालय ने मामले के संपूर्ण तथ्यों, परिस्थितियों और अभिलेखों पर विचार करने के पश्चात् याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अन्वेषण के अनुक्रम में संपूर्ण रजिस्टरों और अभिलेखों का सत्यापन किया गया था । कुल 37 साक्षियों से प्रश्नोत्तर किए गए थे और उनके कथनों को लेखबद्ध किया गया था । इस जांच से यह तथ्य प्रकट हुआ कि द्वितीय अभियुक्त जिला लॉटरी कार्यालय, कोल्लम का सुसंगत समय के दौरान प्रशासनिक प्रमुख था और उस अधिकारी के रूप में उसके द्वारा नकद पुस्तिका पर हस्ताक्षर किया जाना और एक चालान के माध्यम से जिला कोषागार, कोल्लम के माध्यम से बैंक में नकदी को प्रेषित करना आबद्धकर था । द्वितीय अभियुक्त द्वारा प्रत्येक दिवस कार्यालय बंद होने के समय चालानों पर हस्ताक्षर किए गए थे । नकद पुस्तिका को द्वितीय अभियुक्त की ओर से प्रथम अभियुक्त द्वारा लेखबद्ध किया गया था । सामान्यतः, कनिष्ठ अधीक्षक और सहायक जिला लॉटरी अधिकारी, नकद पुस्तिका में प्रथम अभियुक्त द्वारा की गई प्रविष्टियों का सत्यापन करने हेतु आबद्ध थे । अंततः, उन्हें द्वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था ताकि वह प्रारूप आनुषंगिक नकद पुस्तिका के साथ प्रत्येक प्रविष्टि का सत्यापन कर सके । अगले दिवस नकद अतिशेष को द्वितीय अभियुक्त द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित चालान के माध्यम से खजाने में प्रेषित किया जाता था ।

अन्वेषण के अनुक्रम में यह तथ्य प्रकट हुआ कि प्रथम अभियुक्त ने विक्रय पटल पर लॉटरी टिकटों के विक्रय से प्राप्त नकदी को प्राप्त किया था तथा उसे कार्यालय के लॉकर में अपनी अभिरक्षा में रखा था । लॉकर को केवल दो संबद्ध मामलों में खोला और बंद किया जाता था । उक्त लॉकर की चाबियों की अभिरक्षा प्रथम और द्‌वितीय अभियुक्त को सौंपी गई थी । प्रत्येक विक्रय संबंधी प्रविष्टि और संग्रहण की प्रविष्टि को कंप्यूटर प्रणाली में प्रविष्ट किया जाता था जो कि आनुषंगिक नकद पुस्तिका है । आनुषंगिक नकद पुस्तिका और मुख्य नकद पुस्तिका का आवश्यक रूप से सुमेलन होना चाहिए । यह कथन किया गया था कि प्रथम अभियुक्त, द्‌वितीय अभियुक्त की जानकारी और मौनानुकूलता के बिना किसी प्रकार की अविधिपूर्ण कार्रवाइयां नहीं कर सकता था । रोकड़िया द्‌वारा अनुमोदित विक्रयों की जांच द्‌वितीय अभियुक्त द्‌वारा की जाती थी । यह अभिकथन किया गया था कि सामान्यत: मुख्य नकद पुस्तिका को आनुषंगिक नकद पुस्तिका के आधार पर लेखबद्ध किया जाता था और सहायक लॉटरी अधिकारी तथा कनिष्ठ अधीक्षक द्‌वारा सत्यापन किए जाने के पश्चात् नकद पुस्तिका को द्‌वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था । अन्वेषण अभिकरण ने ऐसी सामग्रियों को एकत्रित किया है, जिनसे यह दर्शित होता है कि अधिकांश दिवसों को प्रथम अभियुक्त ने नकद पुस्तिका को कनिष्ठ अधीक्षक और सहायक लॉटरी अधिकारी के समक्ष सत्यापन हेतु प्रस्तुत किए बिना सीधे द्‌वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का निदेश दिया था । द्‌वितीय अभियुक्त ने आज्ञापक प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए नकद पुस्तिका पर हस्ताक्षर किए थे । अत:, ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं कि द्‌वितीय अभियुक्त ने यह कार्य पूर्ण रूप से यह ज्ञात होते हुए किया था कि नकद पुस्तिका को उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्‌वारा नहीं देखा गया था और ऐसा करते समय वह इस तथ्य के प्रति भी पूर्णत: सचेत था कि यह अनुचित कार्य था । इसके अतिरिक्त, तारीख 9 फरवरी, 2013 और तारीख 11 फरवरी, 2013 को अभियुक्त सं. 1 और 2 ने लॉटरी अभिकर्ताओं को यह वचन देकर कि उन्हें लॉटरी टिकट जारी की जाएंगी, उनसे 81,33,966/- रुपए की राशि का संग्रहण किया था । तथापि, उसने

उक्त रकम का दुर्विनियोग किया । निदेशालय के पदधारियों द्वारा की गई लेखा परीक्षा से यह उपदर्शित होता है कि दोनों अभियुक्तों ने मिलकर 1,39,96,323/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया था । उपरोक्त सामग्री से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा प्रक्रिया का उल्लंघन किया गया था और द्वितीय अभियुक्त ने कनिष्ठ अधीक्षक और सहायक जिला लॉटरी अधिकारी की जानकारी के बिना अभिलेखों पर हस्ताक्षर किए थे । अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्रित की गई सामग्रियों से यह उपदर्शित होता है कि यदि द्वितीय अभियुक्त सतर्क होता तो उसे यह ज्ञात हो जाता कि प्रथम अभियुक्त द्वारा दुर्विनियोग का अपराध किया जा रहा है । यह दुर्विनियोग लंबी अवधि तक चलता रहा और इस बात की संभावना अत्यंत क्षीण है कि इस प्रकार का दुर्विनियोग द्वितीय अभियुक्त की जानकारी के बिना किया जा सकता था । कुछ कथनों से यह भी उपदर्शित होता है कि द्वितीय अभियुक्त ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों, जिन्होंने प्रक्रिया के उल्लंघन का विरोध किया था, को धमकी भी दी थी । अभिलेख पर कुछ अन्य ऐसी सामग्रियां भी विद्यमान हैं जिनसे यह उपदर्शित होता है कि द्वितीय अभियुक्त अभिलेखों के मिथ्याकरण और दुर्विनियोग में सक्रिय रूप से शामिल था । अभिलेख से यह भी उपदर्शित होता है कि अभिकर्ताओं से संगृहीत की गई राशि खजाने में जमा नहीं की गई थी । यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर नितांत रूप से कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं है कि कनिष्ठ अधीक्षक और अपर जिला लॉटरी अधिकारी ने किसी भी प्रकार की कोई अविधिपूर्ण कार्यवाहियां की हैं । दूसरी ओर, यह प्रतीत होता है कि प्रथम अभियुक्त द्वारा की गई स्वीकारोक्ति भी दुर्विनियोग की अपराध की ओर संकेत करती है और यह भी प्रतीत होता है कि उक्त स्वीकारोक्ति द्वितीय अभियुक्त को अपराध से बचाने के लिए आशयित है । यह अभिकथन कि सतर्कता संबंधी मामले को अनुचित रूप से कोल्लम पूर्वी पुलिस थाने द्वारा रजिस्टर किए गए मामले के साथ जोड़ा गया था, आधारहीन प्रतीत होता है । उपरोक्त सामग्रियों पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय का ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता है, जिसके आधार पर अंतिम रिपोर्ट में कोई हस्तक्षेप किया जाए, जो कि ठोस

सामग्रियों पर आधारित प्रतीत होती है । यह विचारण का विषय है कि क्या अभियोजन पक्ष उक्त अंतिम रिपोर्ट को साक्षियों और अभिलेखों के माध्यम से साबित करने में सफल रहता है अथवा नहीं । इस प्रक्रम पर, अन्वेषण अभिकरण द्वारा एकत्रित की गई सामग्रियों के आलोक में अंतिम रिपोर्ट में कोई हस्तक्षेप करना उचित प्रतीत नहीं होता है । तदनुसार, दांडिक प्रकीर्ण याचिका को, उसमें कोई गुण न पाए जाने के कारण खारिज किया जाता है । (पैरा 8, 9, 10, 11 और 12)

मूल (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 2081.

वर्तमान याचिका सतर्कता और भ्रष्टाचार रोधी ब्यूरो, कोल्लम के मामला वीसी सं. 01/2015 से उद्भूत होने वाले दांडिक मामला सं. 3/2018 में अंतर्वलित द्वितीय अभियुक्त द्वारा जांच आयुक्त द्वारा फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट के निष्कर्षों को चुनौती देते हुए फाइल की गई है ।

अपीलार्थी की ओर से –

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति सुनील थॉमस – भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 120(ख), 406, 420, 201, 202 और 477(क) के साथ पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13(1)(ग) के साथ पठित धारा 13(2) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए जांच आयुक्त, विशेष न्यायाधीश, तिरुवनंतपुरम की फाइलों से संबंधित वीसी सं. 01/2015/ कोल्लम सतर्कता और भ्रष्टाचार रोधी ब्यूरो से उद्भूत होने वाले दांडिक मामला सं. 3/2018 के दूसरे अभियुक्त द्वारा वर्तमान याचिका फाइल की गई है ।

2. याची का पक्षकथन यह है कि वह तारीख 29 जुलाई, 2011 से 16 फरवरी, 2013 की अवधि के दौरान, जिला लॉटरी कार्यालय, कोल्लम के कार्यालय में जिला लॉटरी अधिकारी के पद पर तैनात था और प्रथम अभियुक्त उसी कार्यालय में रोकड़िया के पद पर तैनात था । इसी

दौरान, उनके कार्यालय में सतर्कता विभाग द्वारा की गई तलाशी और उसके पश्चात् किए गए अन्वेषण के अनुसरण में वर्तमान मामला रजिस्टर किया गया था । सतर्कता विभाग द्वारा किए गए अन्वेषण और जांच के पश्चात् प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट, जो प्रदर्श ए-1 के रूप में चिह्नित है, से प्रकट होने वाले आरोपों का सारांश इस प्रकार है कि याची ने वर्ष 2011 से 2012 की अवधि के दौरान प्रथम अभियुक्त के साथ मिलकर एक आपराधिक षड्यंत्र किया ताकि आनुषंगिक नकद पुस्तिका, मुख्य नकद पुस्तिका, खजाना प्रेषण चालान और बैंक प्रतिभू रजिस्टर में खातों को मिथ्या सिद्ध किया जा सके और इसके द्वारा उन्होंने कुल 2,29,325/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया, जिसमें प्रत्यय विक्रय से प्राप्त हुई 52,279/- रुपए की राशि भी सम्मिलित थी । वर्ष 2012 से वर्ष 2013 की अवधि के दौरान लॉटरी अभिकर्ताओं से 81,31,975/- रुपए की कुल राशि एकत्रित की गई थी तथा लॉटरी अभिकर्ताओं को यह वचन दिया गया था कि उन्हें शीघ्र ही लॉटरी टिकट जारी किए जाएंगे । उक्त राशि का भी दुर्विनियोग किया गया । उसके पश्चात्, 77 लाख रुपए की रकम खजाने में प्रेषित की गई । दोनों अभियुक्तों ने लेखाओं में फेरफार तथा मिथ्या प्रविष्टियां करते हुए कुल 1,30,37,409/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया । तत्पश्चात्, उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि द्वितीय अभियुक्त ने दोनों अभियुक्तों के इस कार्य को उच्चतर अधिकारियों की सूचना में आने से रोकने के लिए इन तथ्यों को छिपाए रखा । सतर्कता विभाग द्वारा फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट के आधार पर मामले का संज्ञान लिया गया और मामले के संबंध में अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई । दोनों अभियुक्तों को समन जारी किए गए । द्वितीय अभियुक्त ने अंतिम रिपोर्ट को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में वर्तमान याचिका फाइल की है ।

3. अंतिम रिपोर्ट का विरोध करते हुए, याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह प्रतिवाद किया कि अभिलेखों से यह दर्शित होता है कि याची ने स्वयं प्रथम अभियुक्त द्वारा किए जा रहे दुर्विनियोग के संबंध में जानकारी प्राप्त होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाहियों को आरंभ किया तथा इस मामले के संबंध में उच्च प्राधिकारियों को

रिपोर्ट प्रस्तुत की थी । विद्वान् काउंसेल ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में प्रदर्श पी-1 से पी-12 का अवलंब लिया । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी प्रतिवाद किया गया था कि जहां तक प्रथम अभियुक्त द्वारा किए गए आपराधिक कार्यों का संबंध है, उस पर किसी प्रकार का कोई आपराधिक दायित्व नहीं डाला जा सकता । प्रथम अभियुक्त ने लिखित में यह स्वीकार करते हुए पत्र प्रस्तुत किए हैं कि उसने अकेले ही दुर्विनियोग का अपराध किया है और उसके कार्यों के लिए कोई भी अन्य व्यक्ति उत्तरदायी नहीं था । यह भी प्रतिवाद किया गया है कि यदि पर्यवेक्षक के स्तर पर कोई कमियां या लापरवाही विद्यमान होती तो द्वितीय अभियुक्त, सहायक जिला लॉटरी अधिकारी और अधीक्षक के पास प्रथम अभियुक्त के संबंध में पर्यवेक्षण और नियंत्रण का प्रयोग किया जा रहा था और इसलिए इन सभी को उक्त अपराधों के लिए आरोपित किया जाना चाहिए था । तथापि, उनके संबंध में कोई भी आरोप नहीं लगाया गया है । सतर्कता विभाग द्वारा प्रथम अभियुक्त के साथ याची को भी अपराध में इस आशय के साथ सम्मिलित किया गया है कि प्रथम अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध में द्वितीय अभियुक्त को भी भागी बनाया जाए । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह प्रतिवाद भी किया गया था कि लॉटरी अभिकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायतों के आधार पर रजिस्ट्रीकृत आपराधिक मामले को भी वर्तमान मामले के साथ जोड़ दिया गया और इन दोनों अपराधों का एक साथ अन्वेषण किया जाना विधि के उपबंधों से परे है और इसलिए उसे विधिक रूप से बनाए नहीं रखा जा सकता ।

4. प्रदर्श पी-2 के रूप में तारीख 3 फरवरी, 2013 के उस ज्ञापन को चिह्नित किया गया है जिसे द्वितीय अभियुक्त द्वारा प्रथम अभियुक्त को जारी किया गया था । यह ज्ञापन लेखाओं में अत्यधिक अंतर विद्यमान होने से संबंधित है और इसके माध्यम से प्रथम अभियुक्त को उक्त ज्ञापन का उत्तर देने के लिए कहा गया था । प्रदर्श पी-8 स्पष्ट रूप से यह दर्शित करता है कि उक्त ज्ञापन तारीख 30 जनवरी, 2013 को किए गए सतर्कता सत्यापन के अनुसरण में, जिसमें उन्होंने कार्यालय में बनाए रखे गए विभिन्न रजिस्टरों का सत्यापन किया था, जारी किया गया था । उसमें यह आरोप लगाया गया था कि

विक्रय आगमों में अत्यधिक अंतर पाया गया था । प्रदर्श ए-3 उस उत्तर को चिह्नित करता है जिसे प्रथम अभियुक्त ने उक्त ज्ञापन के संबंध में प्रस्तुत किया था । अपने उत्तर में प्रथम अभियुक्त ने यह कथन किया था कि यदि खातों में कोई त्रुटि है तो वह प्रत्यय विक्रय प्रेषणों या बैंक प्रतिभू प्रेषणों के कारण या कंप्यूटर में की गई प्रविष्टियों में त्रुटि के कारण उत्पन्न हुई हो सकती है । प्रथम अभियुक्त ने अपने उत्तर के माध्यम से यह अनुरोध किया था कि कंप्यूटर डाटा को अभिनिश्चित करने में उसकी सहायता करने हेतु केलट्रान से विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाए । तारीख 7 फरवरी, 2013 के अनुलग्नक ए-4 के माध्यम से द्वितीय अभियुक्त ने राज्य लॉटरी निदेशक को यह अनुरोध किया था कि कंप्यूटरों की जांच करने के लिए केलट्रान से विशेषज्ञों की व्यवस्था की जाए और साथ ही आंतरिक संपरीक्षकों की भी व्यवस्था की जाए ।

5. यह प्रतीत होता है कि तारीख 8 फरवरी, 2013 को द्वितीय अभियुक्त छुट्टी पर था । उस दिवस, सहायक जिला लॉटरी अधिकारी द्वारा, जो उस समय प्रभारी अधिकारी था, एक टिप्पण प्रस्तुत किया गया था जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि उस दिवस की नकद पुस्तिका के अनुसार खजाने में 72,44,273/- रुपए कम पाए गए थे । उसने यह सूचित किया था कि वह केवल तभी नकद पुस्तिका पर हस्ताक्षर करेगी, जब कम पाई गई रकम के संबंध में संपूर्ण जांच और उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाएगा । उपरोक्त पत्र के अनुसरण में, द्वितीय अभियुक्त द्वारा प्रथम अभियुक्त को अनुलग्नक ए-6 के रूप में चिह्नित ज्ञापन जारी किया गया था, जिसके माध्यम से उसे खजाने में जमा किए जाने के लिए दायी रकम से संबंधित चालान प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था । अनुलग्नक ए-7, वह उत्तर है, जिसे प्रथम अभियुक्त द्वारा उक्त ज्ञापन के उत्तर में प्रस्तुत किया गया था जिसमें उसने यह कथन किया था कि सहायक लॉटरी अधिकारी ने अभिलेखों का सत्यापन करने और यहां तक कि उपलब्ध नकदी मूल्यवर्ग को भी सत्यापित करने से भी इनकार कर दिया था । ब्यौरेवार जांच करने के उपरांत यह पाया गया था कि उस समय 57,91,000/- रुपए का नकद अतिशेष विद्यमान था । वह उस रकम को उसी दिन प्रेषित करने के लिए सहमत हो गया था । यह प्रतीत होता है कि उसने उक्त रकम को

प्रेषित किया था । तथापि, द्वितीय, प्रत्यर्थी ने अनुलग्नक ए-8 के माध्यम से प्रथम अभियुक्त को यह सूचित किया था कि उसे तारीख 8 फरवरी, 2013 को संपूर्ण रकम का प्रेषण करना चाहिए था और उससे संबंधित चालान द्वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए था । तारीख 8 फरवरी, 2013 को अनुलग्नक ए-9 के रूप में चिह्नित आरोप ज्ञापन द्वितीय अभियुक्त द्वारा जारी किया गया था । जिसके माध्यम से यह आरोप लगाया गया था कि यद्यपि प्रथम अभियुक्त ने 1,69,15,338/- रुपए की राशि के खजाना चालान पर द्वितीय अभियुक्त के हस्ताक्षर कराए थे किन्तु वस्तुत: केवल 57,58,840/- रुपए की राशि का ही प्रेषण किया गया था । प्रथम अभियुक्त पर यह आरोप लगाते हुए कि उसने 1,11,56,498/- रुपए की अतिशेष रकम का दुर्विनियोग किया है, एक आरोप ज्ञापन जारी किया गया था जिसमें उससे इस संबंध में स्पष्टीकरण मांगा गया था । प्रथम अभियुक्त ने तारीख 8 फरवरी, 2013 को अनुलग्नक 10 के माध्यम से उपरोक्त आरोप ज्ञापन का उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें उसने इस तथ्य को स्वीकार किया था कि कम पाई गई रकम का उसके द्वारा भिन्न-भिन्न तारीखों को दुर्विनियोग किया गया था और इस संबंध में किसी भी अन्य अधिकारी को कोई सूचना या ज्ञान नहीं था । उसने यह वचनबंध किया कि वह अतिशेष रकम को तारीख 11 फरवरी, 2015 को या उससे पूर्व प्रेषित कर देगा । वस्तुत:, उक्त उत्तर से यह उपदर्शित होता है कि उसने कम पाए गए धन के संबंध में संपूर्ण दायित्व स्वयं पर लिया था । अंततोगत्वा, तारीख 12 मार्च, 2013 की रिपोर्ट, जो अनुलग्नक 12 के रूप में चिह्नित है, द्वितीय अभियुक्त द्वारा राज्य लॉटरी निदेशक को प्रस्तुत की गई थी, जिसमें इस संपूर्ण परस्पर संसूचना के ब्यौरे वर्णित किए गए थे और यह आरोप भी लगाया गया था कि प्रथम अभियुक्त ने दुर्विनियोग का अपराध किया है । साथ ही प्रथम अभियुक्त के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई करने की भी मांग की गई थी ।

6. यह प्रतीत होता है कि इसके अनुसरण में उप निदेशक तथा वित्त अधिकारी द्वारा आरंभिक जांच-पड़ताल की गई थी । अनुलग्नक ए-13 के रूप में उस रिपोर्ट को चिह्नित किया गया है, जो यह उपदर्शित करती है कि गंभीर अनियमितताएं सामने आई हैं और मामले का

अन्वेषण किया जाना आवश्यक है । उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसरण में सतर्कता आयुक्त के समक्ष शिकायत प्रस्तुत की गई, जिसने अपराध को रजिस्टर किया ।

7. अभियोजन के पक्षकथन और अंतिम रिपोर्ट का समर्थन करते हुए सतर्कता विभाग की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् विशेष सरकारी वकील ने अन्वेषण अधिकारी द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के कथन के ब्यौरों को निर्दिष्ट किया । यह कथन किया गया कि अपराध को राज्य लॉटरी निदेशक, तिरुवनंतपुरम के प्रभारी अधिकारी द्वारा फाइल की गई एक शिकायत के अनुसरण में वीएसीवी, कोल्लम इकाई द्वारा की गई सतर्कता संबंधी जांच-पड़ताल के आधार पर रजिस्टर किया गया था । अन्वेषण के लंबित रहने के दौरान कुछ लॉटरी अभिकर्ताओं ने कोल्लम पूर्वी पुलिस के समक्ष एक शिकायत फाइल की थी, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि लॉटरी अभिकर्ताओं ने प्रथम अभियुक्त को भारी भरकम रकमें सौंपी थीं और उसके बदले उसने उन्हें यह आश्वासन दिया था कि वह तत्समान रकम के लिए उन्हें लॉटरी टिकट उपलब्ध कराएगा । उन्हें लॉटरी टिकट दिए बिना प्रथम अभियुक्त ने 81,33,965/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया है । कोल्लम पूर्वी पुलिस थाना द्वारा दंड संहिता की धारा 406, 409 और 34 के अधीन अपराध सं. 672/2013 रजिस्टर किया गया । अन्वेषण के अनुक्रम में, सतर्कता मामला सं. वीसी 01/2015 को कोल्लम पूर्वी पुलिस थाने के अपराध सं. 672/2013 के साथ जोड़ दिया गया और दोनों मामलों का एक साथ अन्वेषण जारी रखा गया ।

8. अन्वेषण अधिकारी द्वारा यह कथन किया गया है कि अन्वेषण के अनुक्रम में संपूर्ण रजिस्टरों और अभिलेखों का सत्यापन किया गया था । कुल 37 साक्षियों से प्रश्नोत्तर किए गए थे और उनके कथनों को लेखबद्ध किया गया था । इस जांच से यह तथ्य प्रकट हुआ कि द्वितीय अभियुक्त जिला लॉटरी कार्यालय, कोल्लम का सुसंगत समय के दौरान प्रशासनिक प्रमुख था और उस अधिकारी के रूप में उसके द्वारा नकद पुस्तिका पर हस्ताक्षर किया जाना और एक चालान के माध्यम से जिला कोषागार, कोल्लम के माध्यम से बैंक में नकदी को प्रेषित करना आबद्धकर था । द्वितीय अभियुक्त द्वारा प्रत्येक दिवस कार्यालय बंद

होने के समय चालानों पर हस्ताक्षर किए गए थे । नकद पुस्तिका को द्‌वितीय अभियुक्त की ओर से प्रथम अभियुक्त द्‌वारा लेखबद्ध किया गया था । सामान्यत:, कनिष्ठ अधीक्षक और सहायक जिला लॉटरी अधिकारी, नकद पुस्तिका में प्रथम अभियुक्त द्‌वारा की गई प्रविष्टियों का सत्यापन करने हेतु आबद्ध थे । अंतत:, उन्हें द्‌वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था ताकि वह प्रारूप आनुषंगिक नकद पुस्तिका के साथ प्रत्येक प्रविष्टि का सत्यापन कर सके । अगले दिवस नकद अतिशेष को द्‌वितीय अभियुक्त द्‌वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित चालान के माध्यम से खजाने में प्रेषित किया जाता था । अन्वेषण के अनुक्रम में यह तथ्य प्रकट हुआ कि प्रथम अभियुक्त ने विक्रय पटल पर लॉटरी टिकटों के विक्रय से प्राप्त नकदी को प्राप्त किया था तथा उसे कार्यालय के लॉकर में अपनी अभिरक्षा में रखा था । लॉकर को केवल दो संबद्ध मामलों में खोला और बंद किया जाता था । उक्त लॉकर की चाबियों की अभिरक्षा प्रथम और द्‌वितीय अभियुक्त को सौंपी गई थी । प्रत्येक विक्रय संबंधी प्रविष्टि और संग्रहण की प्रविष्टि को कंप्यूटर प्रणाली में प्रविष्ट किया जाता था जो कि आनुषंगिक नकद पुस्तिका है । आनुषंगिक नकद पुस्तिका और मुख्य नकद पुस्तिका का आवश्यक रूप से सुमेलन होना चाहिए । यह कथन किया गया था कि प्रथम अभियुक्त, द्‌वितीय अभियुक्त की जानकारी और मौनानुकूलता के बिना किसी प्रकार की अविधिपूर्ण कार्रवाइयां नहीं कर सकता था । रोकड़िया द्‌वारा अनुमोदित विक्रयों की जांच द्‌वितीय अभियुक्त द्‌वारा की जाती थी । यह अभिकथन किया गया था कि सामान्यत: मुख्य नकद पुस्तिका को आनुषंगिक नकद पुस्तिका के आधार पर लेखबद्ध किया जाता था और सहायक लॉटरी अधिकारी तथा कनिष्ठ अधीक्षक द्‌वारा सत्यापन किए जाने के पश्चात् नकद पुस्तिका को द्‌वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था । अन्वेषण अभिकरण ने ऐसी सामग्रियों को एकत्रित किया है, जिनसे यह दर्शित होता है कि अधिकांश दिवसों को प्रथम अभियुक्त ने नकद पुस्तिका को कनिष्ठ अधीक्षक और सहायक लॉटरी अधिकारी के समक्ष सत्यापन हेतु प्रस्तुत किए बिना सीधे द्‌वितीय अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का निदेश दिया था । द्‌वितीय अभियुक्त ने आज्ञापक प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए नकद पुस्तिका पर हस्ताक्षर किए थे । अत:, ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं कि द्‌वितीय

अभियुक्त ने यह कार्य पूर्ण रूप से यह ज्ञात होते हुए किया था कि नकद पुस्तिका को उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा नहीं देखा गया था और ऐसा करते समय वह इस तथ्य के प्रति भी पूर्णत: सचेत था कि यह अनुचित कार्य था ।

9. अन्वेषण के अनुक्रम में यह तथ्य भी प्रकट हुआ कि तारीख 9 फरवरी, 2013 और तारीख 11 फरवरी, 2013 को अभियुक्त सं. 1 और 2 ने लॉटरी अभिकर्ताओं को यह वचन देकर कि उन्हें लॉटरी टिकट जारी की जाएंगी, उनसे 81,33,966/- रुपए की राशि का संग्रहण किया था । तथापि, उसने उक्त रकम का दुर्विनियोग किया । निदेशालय के पदधारियों द्वारा की गई लेखा परीक्षा से यह उपदर्शित होता है कि दोनों अभियुक्तों ने मिलकर 1,39,96,323/- रुपए की राशि का दुर्विनियोग किया था ।

10. आरोपों के समर्थन में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए कथनों के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि अधिकांश साक्षियों ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करते हुए अपने कथन प्रस्तुत किए हैं । उपरोक्त सामग्री से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त द्वारा प्रक्रिया का उल्लंघन किया गया था और द्वितीय अभियुक्त ने कनिष्ठ अधीक्षक और सहायक जिला लॉटरी अधिकारी की जानकारी के बिना अभिलेखों पर हस्ताक्षर किए थे । अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्रित की गई सामग्रियों से यह उपदर्शित होता है कि यदि द्वितीय अभियुक्त सतर्क होता तो उसे यह ज्ञात हो जाता कि प्रथम अभियुक्त द्वारा दुर्विनियोग का अपराध किया जा रहा है । यह दुर्विनियोग लंबी अवधि तक चलता रहा और इस बात की संभावना अत्यंत क्षीण है कि इस प्रकार का दुर्विनियोग द्वितीय अभियुक्त की जानकारी के बिना किया जा सकता था । कुछ कथनों से यह भी उपदर्शित होता है कि द्वितीय अभियुक्त ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों, जिन्होंने प्रक्रिया के उल्लंघन का विरोध किया था, को धमकी भी दी थी । अभिलेख पर कुछ अन्य ऐसी सामग्रियां भी विद्यमान हैं जिनसे यह उपदर्शित होता है कि द्वितीय अभियुक्त अभिलेखों के मिथ्याकरण और दुर्विनियोग में सक्रिय रूप से

शामिल था । अभिलेख से यह भी उपदर्शित होता है कि अभिकर्ताओं से संगृहीत की गई राशि खजाने में जमा नहीं की गई थी ।

11. यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर नितांत रूप से कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं है कि कनिष्ठ अधीक्षक और अपर जिला लॉटरी अधिकारी ने किसी भी प्रकार की कोई अविधिपूर्ण कार्यवाहियां की हैं । दूसरी ओर, यह प्रतीत होता है कि प्रथम अभियुक्त द्वारा की गई स्वीकारोक्ति भी दुर्विनियोग की अपराध की ओर संकेत करती है और यह भी प्रतीत होता है कि उक्त स्वीकारोक्ति द्वितीय अभियुक्त को अपराध से बचाने के लिए आशयित है । यह अभिकथन कि सतर्कता संबंधी मामले को अनुचित रूप से कोल्लम पूर्वी पुलिस थाने द्वारा रजिस्टर किए गए मामले के साथ जोड़ा गया था, आधारहीन प्रतीत होता है ।

12. उपरोक्त सामग्रियों पर विचार करने के पश्चात् मुझे ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता है, जिसके आधार पर अंतिम रिपोर्ट में कोई हस्तक्षेप किया जाए, जो कि ठोस सामग्रियों पर आधारित प्रतीत होती है । यह विचारण का विषय है कि क्या अभियोजन पक्ष उक्त अंतिम रिपोर्ट को साक्षियों और अभिलेखों के माध्यम से साबित करने में सफल रहता है अथवा नहीं । इस प्रक्रम पर, अन्वेषण अभिकरण द्वारा एकत्रित की गई सामग्रियों के आलोक में अंतिम रिपोर्ट में कोई हस्तक्षेप करना उचित प्रतीत नहीं होता है । मुझे अनुलग्नक ए-1 अंतिम रिपोर्ट को अपास्त करने का कोई युक्तियुक्त कारण प्रतीत नहीं होता है ।

तद्नुसार, दांडिक प्रकीर्ण याचिका को, उसमें कोई गुण न पाए जाने के कारण खारिज किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

पु.

रसीन बाबू के. एम.

बनाम

केरल राज्य

(2021 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 227)

तारीख 8 जून, 2021

न्यायमूर्ति वी. जी. अरुण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 240 और धारा 241 – अभियुक्त के विरुद्ध आरोपों का विरचित किया जाना – अभियुक्त द्वारा सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किया जाना और उसके पश्चात् केवल एकमात्र शब्द 'हां' के माध्यम से अपने दोष को स्वीकार करना – अभियुक्त द्वारा दोषी होने के अभिवाक् को प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् उसकी दोषसिद्धि करके उस पर दंड अधिरोपित किया जाना – अभियुक्त द्वारा इस आधार पर दोषसिद्धि के उक्त निर्णय को चुनौती दिया जाना कि उसने सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किया था और उसके द्वारा केवल एकमात्र शब्द 'हां' के माध्यम से अपने दोष को स्वीकार किए जाने को उसके द्वारा प्रस्तुत दोषी होने के अभिवाक् के रूप में नहीं माना जा सकता – न्यायालय द्वारा याची की इस दलील को स्वीकार किया जाना कि एकमात्र शब्द 'हां' को किसी भी परिस्थिति में अभियुक्त द्वारा दोषी होने का अभिवाक् नहीं माना जा सकता तथा उसके आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराते हुए उसके विरुद्ध दंडादेश पारित नहीं किया जा सकता, अत: याचिका मंजूर की जाती है ।

वर्तमान मामले का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 2 जून, 2014 को प्रात: लगभग 10.15 बजे जब अभियुक्त ने अभिकथित रूप से त्रिक्कुल्लम राजकीय उच्च विद्यालय, चेम्माड से विद्यालय में प्रवेश संबंधी समारोह के उपलक्ष्य में निकाले जाने वाले जुलूस को बाधित किया और उसने उसमें स्वैच्छिक रूप से भाग लेने वाले कुछ स्वयं सेवकों पर हमला किया । इस संबंध में याची

के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, 147 और 353 तथा केरल लोक बैठकों में बाधाओं का निवारण अधिनियम, 1961 की धारा 35 के अधीन वर्ष 2014 के अपराध सं. 625 को रजिस्टर किया गया । इसके अतिरिक्त, दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, 147, 148, 341, 323 और 324 के अधीन वर्ष 2014 के अपराध सं. 626 को रजिस्टर किया गया । सभी अभियुक्तों द्वारा अपराधों का दोषी होने का अभिवाक् करने के पश्चात् उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया । सिद्धदोष ठहराए जाने पर अभियुक्तों के विरुद्ध दंडादेश के रूप में प्रत्येक अपराध के लिए जुर्माना अधिरोपित किया गया । उक्त निर्णयों को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी गई है कि विचारण न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अभियुक्त ने दोषी होने का अभिवाक् किया है, अपनाई गई प्रक्रिया अंतर्निहित रूप से अविधिपूर्ण है । उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुनने तथा दंड प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंधों का परिशीलन करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सभी सामग्रियों पर विचार करने के पश्चात् याचिका को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निचले न्यायालय से प्राप्त डायरी के उद्धरणों और अभिलेखों के परिशीलन से यह तथ्य प्रकट होता है कि न्यायालय में अभियुक्तों के विरुद्ध मामलों में तारीख 9 मार्च, 2017 को आरोपों को विरचित किए जाने के समय उक्त आरोपों को अभियुक्तों के समक्ष पढ़कर सुनाया गया था । उसके पश्चात्, अभियुक्तों से यह पूछा गया था कि क्या उन्होंने अपराधों को किया था अथवा नहीं और इसके उत्तर में उन्होंने नकारात्मक उत्तर प्रस्तुत किया था । दोषी न होने के इस अभिवाक् को लेखबद्ध किया गया था और मामलों में अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हेतु अगली सुनवाई की तारीख नियत की गई थी । कुछ आस्थगनों के पश्चात् मामलों के संबंध में तारीख 24 अप्रैल, 2018 को सुनवाई की गई और उस दिन पुनः, अभियुक्त के समक्ष इस प्रश्न को रखा गया कि क्या उसने अपराध किए थे अथवा नहीं । उस समय अभियुक्त ने इसका उत्तर 'हां' में दिया । उक्त उत्तर को दोषी होने का अभिवाक् माना गया और तदनुसार अभियुक्त को

सिद्धदोष ठहराया गया । आश्चर्यजनक रूप से, अभियुक्त से पूछे गए प्रश्नों के संबंध में उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तरों के संबंध में यह देखा जा सकता है कि प्रथम अभियुक्त द्वारा दिए गए इस प्रश्न के उत्तर की प्रविष्टि नहीं की गई है कि क्या उसने अपराध किए थे अथवा नहीं । इस अंतर्निहित दोष को नोट करने के पश्चात्, उच्च न्यायालय को याची द्वारा प्रस्तुत इस प्रतिवाद में बल प्रतीत होता है कि दोषी होने के अभिवाक् को अत्यंत लापरवाह रीति में लेखबद्ध किया गया था । उक्त प्रक्रिया की वैधता, जो यह विनिश्चय करेगी कि याची की दोषसिद्धि कायम रखे जाने योग्य है अथवा नहीं, वह विवाद्यक है जिसका वर्तमान याचिका के माध्यम से समाधान किया जाना है । किसी अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दोषी होने के अभिवाक् पर आधारित दोषसिद्धि केवल एक औपचारिकता मात्र नहीं है । विहित प्रक्रिया का कड़ाई से पालन करना होगा, क्योंकि अभिवाक् को स्वीकार किए जाने की दशा में इसका परिणाम यह होगा कि अभियुक्त को बिना विचारण किए दोषसिद्ध ठहराया जाएगा । विभिन्न मामला विधियों में दिए गए निर्णयों के माध्यम से अधिकथित प्रस्थापना यह है कि दोषी होने के अभिवाक् को न केवल लेखबद्ध किया जाना चाहिए अपितु उसे इस प्रकार लेखबद्ध किया जाना चाहिए कि वह यथासंभव रूप से अभियुक्त द्वारा बोले गए शब्दों के अनुरूप हो । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त से यह पूछा जाना चाहिए कि क्या वह उन अपराधों/उस अपराध का दोषी होने का अभिवाक् करता है, जिसका/जिनका उस पर आरोप लगाया गया है । अभियुक्त को उसके विरुद्ध किए गए अभिकथनों की गंभीरता तथा दोषी होने का अभिवाक् करने की विवक्षाओं को भली-भांति समझने के पश्चात् ही दोषी होने का अभिवाक् करना चाहिए ; उक्त अभिवाक् स्वैच्छिक होना चाहिए तथा उसे स्पष्ट और साफ शब्दों में अभिव्यक्त किया जाना चाहिए । मजिस्ट्रेट को यथासंभव रूप से अभियुक्त द्वारा दोषी होने का अभिवाक् करते समय प्रयुक्त किए गए शब्दों में ही अभियुक्त के अभिवाक् को लेखबद्ध करना चाहिए । मजिस्ट्रेट को, सभी सुसंगत कारकों पर विचार करने के पश्चात् अपने विवेक का प्रयोग करते हुए यह विनिश्चय करना चाहिए कि क्या उसे दोषी होने के अभिवाक् को स्वीकार करना चाहिए अथवा नहीं । यदि अभिवाक् को स्वीकार किया जाता है तो उस स्थिति

में अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराया जा सकता है तथा उस पर समुचित दंड अधिरोपित किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न भी विचारार्थ उद्भूत होता है कि क्या ऐसे किसी अभियुक्त को, जिसने आरोप विरचित किए जाने के प्रक्रम पर दोषी न होने का अभिवाक् किया था, किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर दोषी होने का अभिवाक् करने की अनुमति प्रदान की जा सकती है अथवा नहीं । दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन दोषी होने का अभिवाक् करने का अवसर क्रमश:, सेशन, वारंट और समन मामलों में केवल धारा 229, 241 और 252 के अधीन उपलब्ध कराया गया है । यह अवसर आरोप/अभिकथन को विरचित/अभिकथित करने के तुरंत पश्चात् उद्भूत होता है । वर्तमान मामले में, याची ने सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किया था और आरोप विरचित किए जाने के प्रक्रम पर प्रश्नोत्तर में केवल एकमात्र शब्द 'हां' के उत्तर को किसी भी परिस्थिति में याची द्वारा दोषी होने के अभिवाक् के रूप में नहीं माना जा सकता और वर्तमान मामले में उक्त एकमात्र शब्द 'हां' के आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया गया है । इस प्रकार, याची को दोषी ठहराने वाला निर्णय अपास्त किए जाने का दायी है । परिणामत:, वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका को मंजूर किया जाता है तथा याची की दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित दंडादेश को भी अपास्त किया जाता है । तद्नुसार, वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2058 तथा वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2059 के अभिलेखों को न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट न्यायालय-1, पर परप्पाननगढ़ी को विधि के अनुसार उक्त मामलों का पुन:विचारण करने के लिए वापस भेजा जाता है । (पैरा 5, 7, 10, 11, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	(2019) 14 एस. सी. सी. 723 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. (अनु.) 276 : **जुपूदी आनंद गुप्ता** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	3,10
[2003]	(2003) 2 क्रिमआरएस 141 (केरल) : **संतोष** बनाम **केरल राज्य** ;	12

[1966] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 22 :
महंत कौशल्या दास बनाम **मद्रास राज्य** ; 9

[1961] ए. आई. आर. 1961 (गुज.) 19 :
सूरत चंद्र बनाम **राज्य** । 8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2021 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 227.

याची द्वारा वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका, न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट न्यायालय-1, परप्पाननगढ़ी द्वारा उसे वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2058 और 2059 में दोषसिद्ध ठहराए जाने के निर्णय से व्यथित होकर फाइल की गई है ।

याची की ओर से श्री डी. अनिल कुमार, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री टी. आर. रंजित, लोक अभियोजक

न्यायमूर्ति वी. जी. अरुण – आज तारीख 8 जून, 2021 को निम्नलिखित आदेश पारित किया जाता है ।

याची को न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट न्यायालय-1 परप्पाननगढ़ी द्वारा तिरुरनगढ़ी पुलिस थाने के वर्ष 2014 के अपराध सं. 625 और 2014 के अपराध सं. 626 से उद्भूत होने वाले वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2058 और वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2059 में सिद्धदोष ठहराया गया है । जिस घटना के परिणामस्वरूप अपराधों को रजिस्टर किया गया था वह तारीख 2 जून, 2014 को प्रात: लगभग 10.15 बजे घटित हुई थी, जब अभियुक्त ने अभिकथित रूप से त्रिक्कुल्लम राजकीय उच्च विद्यालय, चेम्माड से विद्यालय में प्रवेश संबंधी समारोह के उपलक्ष्य में निकाले जाने वाले जुलूस को बाधित किया और उसने उसमें स्वैच्छिक रूप से भाग लेने वाले कुछ स्वयं सेवकों पर हमला किया । इस संबंध में याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, 147 और 353 तथा केरल लोक बैठकों में बाधाओं का निवारण अधिनियम, 1961 की धारा 35 के अधीन वर्ष 2014 के अपराध सं. 625 को रजिस्टर किया गया ।

इसके अतिरिक्त, दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, 147, 148, 341, 323 और 324 के अधीन वर्ष 2014 के अपराध सं. 626 को रजिस्टर किया गया । सभी अभियुक्तों द्वारा अपराधों का दोषी होने का अभिवाक् करने के पश्चात् उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया । सिद्धदोष ठहराए जाने पर अभियुक्तों के विरुद्ध दंडादेश के रूप में प्रत्येक अपराध के लिए जुर्माना अधिरोपित किया गया । उक्त निर्णयों को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी गई है कि विचारण न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अभियुक्त ने दोषी होने का अभिवाक् किया है, अपनाई गई प्रक्रिया अंतर्निहित रूप से अविधिपूर्ण है ।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री डी. अनिल कुमार और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् लोक अभियोजक श्री टी. आर. रंजित को सुना ।

3. विद्वान् काउंसेल श्री अनिल कुमार द्वारा यह प्रतिवाद प्रस्तुत किया गया कि किसी अभियुक्त द्वारा दोषी होने का अभिवाक् किए जाने के आधार पर और इसके परिणामस्वरूप उसे सिद्धदोष ठहराया जाता है और बिना विचारण के उसे दंडादिष्ट किया जाता है और इसलिए मजिस्ट्रेटों के लिए यह सुनिश्चित करना आबद्धकर है कि दोषी होने के संबंध में किया गया अभिवाक् स्वैच्छिक, स्पष्ट और संदेहरहित है और उसे, उसके द्वारा की जाने वाली अपराध की स्वीकारोक्ति की विवक्षाओं को भली-भांति समझने के पश्चात् प्रस्तुत किया गया है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, आरोप में उल्लिखित अपराधों के संबंध में याची से यह प्रश्न किए जाने पर कि क्या उसने उक्त अपराध किए थे, एकमात्र शब्द "हां" में दिया गया उसका उत्तर पूर्वोक्त अपेक्षाओं को पूरा नहीं करेगा । उसके पश्चात् विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई कि याची को, उसके द्वारा दोषी होने का अभिवाक् किए जाने के परिणामों के संबंध में अवगत नहीं कराया गया था और उसके द्वारा इस प्रकार अनजाने में किए गए कार्य के परिणामस्वरूप याची को, हालांकि उसका नाम कांस्टेबल (दूरसंचार) की रैंक धारण करने वाले नामों की सूची में सम्मिलित किया गया था, फिर भी उसे नियुक्त किए जाने से इनकार कर दिया गया । तत्पश्चात् विद्वान् काउंसेल द्वारा यह तर्क

प्रस्तुत किया गया कि आक्षेपित निर्णय अन्यथा भी दोषपूर्ण है क्योंकि उसे पारित करने में मस्तिष्क का उपयोग नहीं किया गया और यह तथ्य इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि केरल लोक बैठकों में बाधाओं का निवारण अधिनियम, 1961, इस तथ्य के बावजूद भी कि उक्त अधिनियमिती में केवल तीन धाराएं सम्मिलित हैं, की धारा 35 के अधीन याची को सिद्धदोष ठहराए जाने तथा उस पर अधिरोपित दंडादेश से स्पष्ट हो जाती है । विद्वान् काउंसेल ने अपने इस तर्क के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **जुपूदी आनंद गुप्ता** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है ।

4. इसके उत्तर में विद्वान् लोक अभियोजक ने इस बात पर बल दिया कि ऐसे मामलों में, जहां किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि, अभियुक्त द्वारा अपने अपराध की स्वीकारोक्ति के आधार पर की गई है, दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए सीमित संभावनाएं विद्यमान हैं ।

5. निचले न्यायालय से प्राप्त डायरी के उद्धरणों और अभिलेखों के परिशीलन से यह तथ्य प्रकट होता है कि न्यायालय में अभियुक्तों के विरुद्ध मामलों में तारीख 9 मार्च, 2017 को आरोपों को विरचित किए जाने के समय उक्त आरोपों को अभियुक्तों के समक्ष पढ़कर सुनाया गया था । उसके पश्चात्, अभियुक्तों से यह पूछा गया था कि क्या उन्होंने अपराधों को किया था अथवा नहीं और इसके उत्तर में उन्होंने नकारात्मक उत्तर प्रस्तुत किया था । दोषी न होने के इस अभिवाक् को लेखबद्ध किया गया था और मामलों में अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने हेतु अगली सुनवाई की तारीख नियत की गई थी । कुछ आस्थगनों के पश्चात् मामलों के संबंध में तारीख 24 अप्रैल, 2018 को सुनवाई की गई और उस दिन पुनः, अभियुक्त के समक्ष इस प्रश्न को रखा गया कि क्या उसने अपराध किए थे अथवा नहीं । उस समय अभियुक्त ने इसका उत्तर 'हां' में दिया । उक्त उत्तर को दोषी होने का अभिवाक् माना गया और तद्नुसार अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया गया । आश्चर्यजनक रूप से, अभियुक्त से पूछे गए प्रश्नों के संबंध में उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तरों के संबंध में यह देखा जा सकता है कि

[1] (2019) 14 एस. सी. सी. 723 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. (अनु.) 276.

प्रथम अभियुक्त द्वारा दिए गए इस प्रश्न के उत्तर की प्रविष्टि नहीं की गई है कि क्या उसने अपराध किए थे अथवा नहीं । इस अंतर्निहित दोष को नोट करने के पश्चात्, मुझे याची द्वारा प्रस्तुत इस प्रतिवाद में बल प्रतीत होता है कि दोषी होने के अभिवाक् को अत्यंत लापरवाह रीति में लेखबद्ध किया गया था । उक्त प्रक्रिया की वैधता, जो यह विनिश्चय करेगी कि याची की दोषसिद्धि कायम रखे जाने योग्य है अथवा नहीं, वह विवाद्यक है जिसका वर्तमान याचिका के माध्यम से समाधान किया जाना है ।

6. संदर्भात्मक रूप से वर्तमान याचिका के निपटारे में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 240 और धारा 241 सुसंगत हैं और इसलिए उन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "240. **आरोप विरचित करना** – (1) यदि ऐसे विचार, परीक्षा, यदि कोई हो, और सुनवाई कर लेने पर मजिस्ट्रेट की यह राय है कि ऐसी उपधारणा करने का आधार है कि अभियुक्त ने इस अध्याय के अधीन विचारणीय ऐसा अपराध किया है जिसका विचारण करने के लिए वह मजिस्ट्रेट सक्षम है और जो उसकी राय में उसके द्वारा पर्याप्त रूप से दंडित किया जा सकता है तो वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप लिखित रूप में विरचित करेगा ।
>
> (2) तब वह आरोप अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाएगा और उससे यह पूछा जाएगा कि क्या वह उस अपराध का, जिसका आरोप लगाया गया है दोषी होने का अभिवाक् करता है या विचारण किए जाने का दावा करता है ।
>
> 241. **दोषी होने के अभिवाक् पर दोषसिद्धि** – यदि अभियुक्त दोषी होने का अभिवचन करता है तो मजिस्ट्रेट उस अभिवाक् को लेखबद्ध करेगा और उसके आधार पर उसे, स्वविवेकानुसार, दोषसिद्ध कर सकेगा ।"

7. ऊपर उद्धृत धाराओं में विहित व्यापक प्रक्रिया से यह अत्यंत स्पष्ट हो जाता है कि किसी अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दोषी होने

के अभिवाक् पर आधारित दोषसिद्धि केवल एक औपचारिकता मात्र नहीं है । विहित प्रक्रिया का कड़ाई से पालन करना होगा, क्योंकि अभिवाक् को स्वीकार किए जाने की दशा में इसका परिणाम यह होगा कि अभियुक्त को बिना विचारण किए दोषसिद्ध ठहराया जाएगा । इस संबंध में "अभिवाक्" शब्द के विधिक अर्थान्वयन पर विचार करना युक्तियुक्त होगा, जिससे 'किसी प्रकार के अभिवचन प्रदत्त या फाइल करना' ; 'किसी वाद हेतुक में अभिवचनों का संचालन करना' ; 'ऐसे किसी वाद में, जिसमें तथ्य का अभिकथन अंतर्विष्ट है, अभिवचनों का अन्त:क्षेप करना' ; 'औपचारिक रीति में, यथास्थिति, वादी की घोषणा या उसके द्वारा लाए गए अभियोग का प्रतिवादी द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया जाना' अभिप्रेत है । विधिक शब्दावली में 'दोषी' शब्द का अर्थ निम्नानुसार है – 'उसने कोई अपराध या अपकृत्य किया है ; किसी कैदी द्वारा किसी अभियोग में अभिवचन में उस समय प्रयुक्त किया गया शब्द जब वह उस अपराध को स्वीकार करता है, जिसके संबंध में आरोप लगाया गया है तथा किसी जूरी द्वारा उसे दोषसिद्ध ठहराते हुए प्रयुक्त किया गया शब्द' । अत:, 'अभिवाक् और दोषी' पदों के अर्थों पर विचार करते हुए, 'दोषी होने का अभिवाक् करने' पद से यह अपेक्षित किया जाना चाहिए कि वह एक सकारात्मक और सुभिज्ञ कार्य है, जिसके द्वारा अपराध/अपराधों के सभी अव्यवों को स्वीकार किया जाता है । न्यायालय द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में केवल मुख से बोल देने या एकमात्र शब्द 'हां' कह देने को किसी भी परिस्थिति में अभियुक्त द्वारा अपराध को स्वीकार किया जाना या उसके द्वारा दोषी होने का अभिवाक् किए जाने के रूप में नहीं माना जा सकता ।

8. एक अन्य आज्ञापक अपेक्षा यह है कि मजिस्ट्रेट दोषी होने के अभिवाक् को लेखबद्ध करेगा, जो एक ऐसा सारवान् विषय है जिसका आशय न्याय प्रशासन को सहायता देना है । **सूरत चंद्र** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में असम उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेटों को इस तथ्य का स्मरण कराया था कि किसी अभियुक्त को उसके द्वारा प्रस्तुत की गई

---

[1] ए. आई. आर. 1961 (गुज.) 19.

उसके अपराध की स्वीकारोक्ति के आधार पर सिद्धदोष ठहराने का आदेश कोई अंतिम आदेश नहीं है क्योंकि उसे पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है और उच्चतर न्यायालय का यह समाधान होना आवश्यक है कि मजिस्ट्रेट की अभियुक्त द्वारा अपराध की स्वीकारोक्ति के संबंध में क्या राय थी और क्या उसके विचार में वह वास्तव में अपराध की स्वीकारोक्ति थी । निस्संदेह रूप से, जब अभियुक्त द्वारा अपराध की स्वीकारोक्ति को लेखबद्ध नहीं किया जाता है तो उच्चतर न्यायालय को अपने स्वयं का स्वतंत्र निष्कर्ष निकालने के अवसर से वंचित रहना पड़ता है । इसके परिणामस्वरूप गंभीर रूप से न्याय की हानि हो सकती है ।

9. **महंत कौशल्या दास** बनाम **मद्रास राज्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पुरानी संहिता की धारा 243 (जो 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 252 के तत्समान है) के संदर्भ में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था :–

> "6. इस संबंध में कोई विवाद विद्यमान नहीं है कि वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 243 की अपेक्षाओं का उल्लंघन किया गया है । उक्त धारा निम्नानुसार है –
>
> > '243. यदि अभियुक्त इस तथ्य को स्वीकार करता है कि उसने उस अपराध को किया है, जिसका आरोप उस पर लगाया गया है तो यथासंभव रूप से उसकी स्वीकारोक्ति को उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में लेखबद्ध किया जाएगा और यदि वह इस संबंध में कोई पर्याप्त हेतुक प्रस्तुत नहीं करता है कि उसकी दोषसिद्धि क्यों नहीं की जानी चाहिए तो मजिस्ट्रेट तद्नुसार, उसे दोषसिद्ध ठहरा सकेगा ।'
>
> मजिस्ट्रेट द्वारा अपनी रिपोर्ट में यह कथन किया गया है कि अपराध की विशिष्टियों को खंडपीठ के लिपिक श्री एम. सुकुमार राव द्वारा अपीलार्थी को स्पष्ट किया गया था और उसी खंडपीठ लिपिक द्वारा न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 22.

गए दोषी होने के अभिवाक् का निर्वचन किया गया था । अभिलेख से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी द्वारा की गई अपराध की स्वीकारोक्ति को 'यथासंभव रूप से उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में' लेखबद्ध नहीं किया गया है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 243 द्वारा अपेक्षित है । यह सत्य है कि तारीख 12 मार्च, 1963 के निर्णय में मजिस्ट्रेट ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी ने 'दोषी होने का अभिवाक् किया है', किन्तु अभिलेख में इस संबंध में किसी प्रकार का कोई संकेत अंतर्विष्ट नहीं है कि अपीलार्थी ने मजिस्ट्रेट के समक्ष वास्तव में क्या स्वीकार किया । हमारी राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 243 की अपेक्षाएं आज्ञापक प्रकृति की हैं और इन उपबंधों का उल्लंघन विचारण को दूषित करता है तथा उसके आधार पर की गई दोषसिद्धि विधिक रूप से अविधिमान्य है । किसी धारा में विहित कोई अपेक्षा मात्र एक औपचारिकता नहीं है, अपितु यह एक सारवान् विषय है जिसका आशय समुचित न्याय प्रशासन को संरक्षित करना है । यह महत्वपूर्ण है कि धारा के निबंधनों का कड़ाई से अनुपालन किया जाता है क्योंकि किसी अभियुक्त का अपील करने का अधिकार उस परिस्थिति पर निर्भर करता है कि क्या उसने दोषी होने का अभिवाक् किया था अथवा नहीं और इस कारणवश विधान-मंडल यह अपेक्षा करता है कि अभियुक्त द्वारा उसके दोषी होने के अभिवाक् में प्रयुक्त सही-सही शब्दों को यथासंभव रूप से, किसी त्रुटि या गलत अनुमान का निवारण करने के लिए उसकी अपनी भाषा में लेखबद्ध किया जाना चाहिए । मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा क्वीन एम्प्रेस **बनाम** इरूगडू (1892 आई. एल. आर. 15 मद्रास 83) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 243 में विहित प्रक्रिया का उल्लंघन पर्याप्त रूप से इतना गंभीर है कि उसके परिणामस्वरूप की गई अभियुक्त की दोषसिद्धि को अविधिमान्य ठहराया जा सकता है । इसी प्रकार का मत कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा शैलाबाला

दासी **बनाम** एम्परर (आई. एल. आर. 62 कलकत्ता 1127 = ए. आई. आर. 1935 कलकत्ता 489) और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा मुकंदी लाल **बनाम** राज्य (ए. आई. आर. 1952 इला. 212) वाले मामले में लिया गया था । हमारी राय में, ये मामले सही रूप से विधि के इस प्रश्न पर विधिक स्थिति को अधिकथित करते हैं ।"

10. **जुपूदी आनंद गुप्ता** (उपरोक्त) वाले मामले में महंत कौशल्या दास के निर्णय का अनुसरण किया गया था तथा अभिकथित दोषी होने के अभिवाक् के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि, जिसे विचारण न्यायालय लेखबद्ध करने में असफल रहा था, को अपास्त किया गया था । उपरोक्त निर्णयों के माध्यम से अधिकथित प्रस्थापना यह है कि दोषी होने के अभिवाक् को न केवल लेखबद्ध किया जाना चाहिए अपितु उसे इस प्रकार लेखबद्ध किया जाना चाहिए कि वह यथासंभव रूप से अभियुक्त द्वारा बोले गए शब्दों के अनुरूप हो ।

11. ऊपर विचार में लिए गए सुसंगत उपबंध तथा पूर्व मामला विधियां, किसी अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए दोषी होने के अभिवाक् के संबंध में कार्रवाई करने से पूर्व निम्नलिखित अपेक्षाओं के अनुपालन को आज्ञापक बनाती हैं :–

(i) मजिस्ट्रेट को अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित अपराधों को विनिर्दिष्ट करते हुए आरोप विरचित करने चाहिए ;

(ii) आरोप पत्र अभियुक्त को पढ़कर सुनाया जाना चाहिए तथा उसके संबंध में सभी स्पष्टीकरण उपलब्ध कराए जाने चाहिए ;

(iii) अभियुक्त से यह पूछा जाना चाहिए कि क्या वह उन अपराधों/उस अपराध का दोषी होने का अभिवाक् करता है, जिसका/जिनका उस पर आरोप लगाया गया है ;

(iv) अभियुक्त को उसके विरुद्ध किए गए अभिकथनों की गंभीरता तथा दोषी होने का अभिवाक् करने की विवक्षाओं को भली-भांति समझने के पश्चात् ही दोषी होने का अभिवाक् करना चाहिए ; उक्त अभिवाक् स्वैच्छिक होना चाहिए तथा उसे स्पष्ट और साफ शब्दों में अभिव्यक्त किया जाना चाहिए ;

(v) मजिस्ट्रेट को यथा संभव रूप से अभियुक्त द्वारा दोषी होने का अभिवाक् करते समय प्रयुक्त किए गए शब्दों में ही अभियुक्त के अभिवाक् को लेखबद्ध करना चाहिए ;

(vi) मजिस्ट्रेट को, सभी सुसंगत कारकों पर विचार करने के पश्चात् अपने विवेक का प्रयोग करते हुए यह विनिश्चय करना चाहिए कि क्या उसे दोषी होने के अभिवाक् को स्वीकार करना चाहिए अथवा नहीं ; और

(vii) यदि अभिवाक् को स्वीकार किया जाता है तो उस स्थिति में अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराया जा सकता है तथा उस पर समुचित दंड अधिरोपित किया जा सकता है ।

12. इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न भी विचारार्थ उद्भूत होता है कि क्या ऐसे किसी अभियुक्त को, जिसने आरोप विरचित किए जाने के प्रक्रम पर दोषी न होने का अभिवाक् किया था, किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर दोषी होने का अभिवाक् करने की अनुमति प्रदान की जा सकती है अथवा नहीं । दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन दोषी होने का अभिवाक् करने का अवसर क्रमशः, सेशन, वारंट और समन मामलों में केवल धारा 229, 241 और 252 के अधीन उपलब्ध कराया गया है । यह अवसर आरोप/अभिकथन को विरचित/अभिकथित करने के तुरंत पश्चात् उद्भूत होता है । **संतोष** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह राय अभिव्यक्त की थी कि किसी अभियुक्त द्वारा विचारण में आरोप विरचित होने के पश्चात् किसी आगे के प्रक्रम पर दोषी होने का अभिवाक् प्रस्तुत किया जा सकता है । उक्त निर्णय के सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत किया गया है :–

"निस्संदेह रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध विद्यमान नहीं है, जो किसी न्यायालय को यह अनुमति देने में समर्थ बनाता हो कि अभियुक्त स्वयं का विचारण किए जाने के दावे को वापस ले सकता है और उसके पश्चात् न्यायालय ऐसे अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत दोषी होने के अभिवाक् के आधार पर उसे दोषसिद्ध ठहरा सकता है । किन्तु जैसा कि याची के विद्वान्

---

[1] (2003) 2 क्रिमआरएस 141 (केरल).

काउंसेल द्वारा प्रतिवाद किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता में कहीं भी यह प्रतिषिद्ध नहीं है कि अभियुक्त विचारण के अनुक्रम में अपने दोषी होने के अभिवाक् को प्रस्तुत नहीं कर सकता तथा न्यायालय ऐसे अभियुक्त द्वारा अपने दोष की पश्चात्वर्ती स्वीकारोक्ति के आधार पर उसे दोषसिद्ध नहीं ठहरा सकता । विचारणों का मुख्य उद्देश्य यह है कि अपराध के संबंध में अन्वेषण किया जाए और सत्य का पता लगाया जाए किंतु जब स्वयं अभियुक्त द्वारा अपने दोष को स्वीकार कर लिया जाता है और ऐसी स्वीकारोक्ति को स्वैच्छिक पाया जाता है तो ऐसा कोई कारण विद्यमान नहीं है जिसके आधार पर न्यायालय उसके द्वारा किए गए विचारण के दावे को वापस लेने और उसके द्वारा दोषी होने के अभिवाक् को प्रस्तुति करने की अनुमति न प्रदान करे । इस संबंध में यह सुसंगत है कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा श्यामा चरण भरथुअर और अन्य **बनाम** एम्परर (ए. आई. आर. 1934 पटना 330) वाले मामले में दिए गए निर्णय का उल्लेख किया जाए । उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उस समय किसी प्रकार की कोई विवक्षा सामने नहीं आती है जब कोई अभियुक्त विचारण के अनुक्रम में उसके द्वारा प्रस्तुत विचारण के दावे को वापस लेता है और दोषी होने का अभिवाक् करता है तो ऐसे में न्यायालय या तो दोषी होने के ऐसे अभिवाक् को स्वीकार कर सकता है तथा उसके आधार पर अपना निर्णय सुना सकता है या फिर उसे अस्वीकार करके मामले के विचारण को जारी रख सकता है । ऐसा ही एक प्रश्न इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष राम किशुन **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (1996) क्रिमिनल एल. जे. 440 = 1996 इला. एल. जे. 242) वाले मामले में विचारार्थ आया था । इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दोषी होने का अभिवाक्, अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित होने के पश्चात् विचारण के किसी प्रक्रम पर प्रस्तुत किया जा सकता है । माननीय उच्च न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया था कि साक्ष्य की आवश्यकता केवल उस समय उद्भूत होगी जब आरोप को स्वीकार नहीं किया जाता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 229

की उपयोज्यता को किसी विशिष्ट तारीख या अवसर तक निर्बंधित करने का कोई कारण विद्यमान नहीं है किन्तु धारा का प्रयोजन स्पष्ट है कि किसी अभियुक्त द्वारा दोषी होने का अभिवाक् अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित होने के पश्चात् विचारण के किसी प्रक्रम पर प्रस्तुत किया जा सकता है । यदि किसी अभियुक्त को उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारण के दावे को वापस लेने और दोषी होने का अभिवाक् करने की अनुमति प्रदान की जाती है तो ऐसी स्थिति में विचारण शीघ्र समाप्त किया जा सकता है और इससे न्यायालय का कीमती समय भी बचेगा ।"

मेरी सुविचारित राय में, **संतोष** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत पर दंड प्रक्रिया संहिता में वर्ष 2006 के अधिनियम सं. 2 द्वारा अंत:स्थपित अध्याय 21क के उपबंधों के आलोक में पुन: विचार करना अपेक्षित है, जिसमें 'विचारण के लंबित रहने के दौरान' अपराध के संबंध में न्यायालय के समक्ष सौदा अभिवाक् किए जाने का उपबंध किया गया है ।

13. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, याची ने सर्वप्रथम दोषी न होने का अभिवाक् किया था और आरोप विरचित किए जाने के प्रक्रम पर प्रश्नोत्तर में केवल एकमात्र शब्द 'हां' के उत्तर को किसी भी परिस्थिति में याची द्वारा दोषी होने के अभिवाक् के रूप में नहीं माना जा सकता और वर्तमान मामले में उक्त एकमात्र शब्द 'हां' के आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया गया है । इस प्रकार, याची को दोषी ठहराने वाला निर्णय अपास्त किए जाने का दायी है । परिणामत:, वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका को मंजूर किया जाता है तथा याची की दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित दंडादेश को भी अपास्त किया जाता है । तद्नुसार, वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2058 तथा वर्ष 2014 के अपराध मामला सं. 2059 के अभिलेखों को न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट न्यायालय-1, पर परप्पाननगढ़ी को विधि के अनुसार उक्त मामलों का पुन:विचारण करने के लिए वापस भेजा जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

पु.

वी. एस. अच्युतानंदन

बनाम

केरल राज्य

(2019 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 4692)

तारीख 8 जून, 2021

न्यायमूर्ति वी. जी. अरुण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – समान तथ्यों के आधार पर द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर किए जाने की वैधता को चुनौती दिया जाना – अभियुक्तों द्वारा अभिकथित रूप से मिथ्या दस्तावेज तैयार करके सरकारी संपत्ति पर कब्जा किया जाना – अन्य सह-अभियुक्त, जो सरकारी अधिकारी हैं, द्वारा इस अपराध के कारण में सहायता किया जाना और उनके द्वारा प्रतिकूल रिपोर्टों तथा विहित प्रक्रिया का उल्लंघन करके धनीय फायदा प्राप्त किया जाना – याची द्वारा यह दलील प्रस्तुत किया जाना कि वर्तमान परिवाद और पूर्व में अभिखंडित की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की अंतर्वस्तु में अंतर है – उच्च न्यायालय ने सभी अभिलेखों के परिशीलन के पश्चात् यह पाया कि वर्तमान परिवाद और पूर्व में अभिखंडित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथन सारवान् रूप से एक समान हैं और उनमें केवल ब्यौरों संबंधी अंतर है जो कि सारवान् प्रतीत नहीं होता – ऐसी परिस्थिति में यदि याची के अनुरोध को स्वीकार किया जाता है तो इसका परिणाम यह होगा कि समान तथ्यों के आधार पर एक द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर की जाएगी, जो कि विधिपूर्ण नहीं है, अत: याचिका खारिज की गई ।

वर्तमान मामला का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि छठी प्रत्यर्थी कंपनी के कब्जे में तिरुवनंतपुरम स्थित पत्तूर में एक एकड़ भूमि विद्यमान है । उस संपत्ति में आठवें प्रत्यर्थी द्वारा शॉपिंग मॉल का सन्निर्माण किया जा रहा है । केरल जल प्राधिकरण के सीवर पंपिंग की मुख्य लाइन छठे प्रत्यर्थी की संपत्ति के तिरछे रूप से अवस्थित है । 2013-14 की अवधि के दौरान जब दूसरा प्रत्यर्थी राज्य

का मुख्यमंत्री था और प्रत्यर्थी सं. 3 से 5 उस सरकार में उच्च पद धारण करने वाले पदाधिकारी थे तो उस समय सीवर लाइन को छठे प्रत्यर्थी की संपत्ति के एक ओर स्थानांतरित किया गया था जिसके परिणामस्वरूप एक बड़े क्षेत्र में सन्निर्माण संभव हो सका था । वह भूमि, जिसमें सीवर लाइन को स्थानांतरित किया गया वस्तुत: सरकारी भूमि थी, जो केरल जल आपूर्ति और सीवर अधिनियम, 1986 की धारा 16 के अधीन जल प्राधिकरण में निहित थी । प्रत्यर्थी सं. 6 और 7 ने मिथ्या दस्तावेजों का सृजन करके उनके कब्जे वाली भूमि को कम कर दिया था । सीवर लाइन को स्थानांतरित करके प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने प्रत्यर्थी सं. 6 से 9 की असम्यक् धनीय फायदा प्राप्त करने में सहायता की थी । पाइप लाइन को स्थानांतरित करने को प्राधिकृत करने वाले आदेश को, प्रतिकूल रिपोर्टों को अधिक्रांत करते हुए तथा विहित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए जारी किया गया था । अभियुक्तों ने अपनी उपरोक्त कार्यवाहियों और लोपों के माध्यम से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 120ख के अधीन दंडनीय अपराध किया है । अनुलग्नक ए-2 फाइल करने से पूर्व एक अन्य जागरूक नागरिक ने लोक आयुक्त के समक्ष एक शिकायत फाइल की थी । उक्त शिकायत के लंबित रहने के दौरान उप पुलिस अधीक्षक, सतर्कता और भ्रष्टाचार रोधी ब्यूरो ने वीएसीबी, एसआईयू-1, तिरुवनंतपुरम में भ्रष्टाचार अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) और दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन वर्ष 2017 के अपराध सं. 3 को रजिस्टर किया । कुछ अभियुक्तों ने अनुलग्नक ए-3, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तथा संबद्ध मामलों को वर्ष 2017 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 36735 के माध्यम से उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । वर्तमान मामले के याची, जिसने उस समय तक अनुलग्नक ए-2 के रूप में चिह्नित परिवाद प्रस्तुत किया था, को भी रिट याचिकाओं में एक प्रत्यर्थी के रूप में सम्मिलित किया गया । इस न्यायालय ने आरोपों के संबंध में व्यापक विचार-विमर्श करने के पश्चात् जल प्राधिकरण द्वारा छठे प्रत्यर्थी की भूमि में हित के दावे को कायम रखे जाने योग्य नहीं पाया । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि विवादास्पद संपत्ति के संबंध में इस अभिकथन को स्वीकार भी कर लिया जाए कि वह संपत्ति जल प्राधिकरण की है, तो भी अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा की गई कार्रवाई भ्रष्टाचार अधिनियम के

उपबंधों का उल्लंघन नहीं करती है क्योंकि छठी प्रत्यर्थी कंपनी ने सीवर पाइप लाइन को अपनी संपत्ति के एक भाग से दूसरे भाग में स्थानांतरित करके किसी प्रकार का कोई धनीय फायदा प्राप्त नहीं किया है । इन निष्कर्षों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भ्रष्टाचार अधिनियम के अधीन अपराधों के कारण को प्रकट नहीं किया गया है । तद्नुसार, अनुलग्नक ए-3, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तथा उसके आधार पर आगे की जाने वाली कार्यवाहियों को अभिखंडित किया गया । याची द्वारा इस निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है । उच्च न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने तथा विषय पर निर्दिष्ट विभिन्न मामला विधियों को विचार में लेने के पश्चात् याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अनुलग्नक ए-3 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और अनुलग्नक ए-2 परिवाद में किए गए प्रकथनों की तुलना करने पर यह प्रकट होता है कि उनमें लगाए गए अभिकथन सारवान् रूप से एक समान हैं । केवल यह अंतर विद्यमान है कि अनुलग्नक ए-2 परिवाद में अधिक ब्यौरों को अंतर्विष्ट किया गया है और यह अंतर इस सुस्थापित विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए सारवान् नहीं है कि किसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को सभी तथ्यों का सार-संग्रह होना अनिवार्य नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में यदि याची की प्रार्थना को मंजूर किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप तथ्यों के एक समान सेट के आधार पर एक द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर करनी होगी । संज्ञेय अपराध के कारण के संबंध में केवल प्रथम सूचना ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 की अपेक्षाओं का समाधान करती है । इस प्रकार किसी मामले में द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं हो सकती और परिणामत: समान संज्ञेय अपराध या समान घटना, जिसके कारण एक या अधिक संज्ञेय अपराध उद्भूत होते हैं, के संबंध में प्रत्येक पश्चात्वर्ती सूचना की प्राप्ति पर नए सिर से अन्वेषण नहीं किया जा सकता । ऊपरउल्लिखित सिद्धांत के आधार पर विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने न्यायोचित रूप से अनुलग्नक ए-2 परिवाद को नामंजूर किया था क्योंकि समान अभिकथनों के आधार पर कोई द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर नहीं की जा सकती, वह भी उस समय जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को गुणागुण के आधार पर अभिखंडित

कर दिया गया हो । उच्च न्यायालय की सुविचारित राय में उपरोक्त निष्कर्ष को ऐसी घोषणा के रूप में नहीं माना जा सकता कि ऐसे मामलों में भी, जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को पहले से ही रजिस्टर कर दिया गया हो, वहां समान अभिकथनों को अंतर्विष्ट करते हुए किसी पश्चात्वर्ती शिकायत के आधार पर आबद्धकर रूप से प्रारंभिक जांच-पड़ताल की जानी चाहिए । ऊपरउल्लिखित कारणों से अनुलग्नक ए-1 को दी गई चुनौती असफल होती है । परिणामतः, दांडिक प्रकीर्ण याचिका को खारिज किया जाता है । (पैरा 5, 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 2 एस. सी. सी. 1 =
ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 187 :
ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 3, 7

[2001] (2001) 6 एस. सी. सी. 181 =
ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2637 :
टी. टी. एंटनी बनाम **केरल राज्य ।** 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 4692.

वर्तमान दांडिक प्रकीर्ण याचिका के माध्यम से जांच आयुक्त और विशेष न्यायाधीश, तिरुवनंतपुरम के आदेश के अनुलग्नक ए-1 परिवाद को चुनौती दी गई है ।

याची की ओर से सर्वश्री एस. चंद्रशेखरन नायर, राजू जार्ज (करुवत्ता) और एस. गोकुल बाबू

प्रत्यर्थी की ओर से विशेष लोक अभियोजक, सतर्कता श्री के. राजेश के साथ सरकारी अभियोजक श्रीमती के. बी. सोनी

न्यायमूर्ति वी. जी. अरुण – वर्तमान दांडिक प्रकीर्ण याचिका के माध्यम से जांच आयुक्त और विशेष न्यायाधीश, तिरुवनंतपुरम के उस आदेश के अनुलग्नक ए-1 को चुनौती दी गई है, जिसके माध्यम से

याची द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 से 9 के विरुद्ध फाइल किए गए अनुलग्नक ए-2 परिवाद को खारिज कर दिया गया था । याची, जो राज्य का पूर्व मुख्यमंत्री है, ने अपने परिवाद में निम्नलिखित आरोप लगाए थे –

छठी प्रत्यर्थी कंपनी के कब्जे में तिरुवनंतपुरम स्थित पत्तूर में एक एकड़ भूमि विद्यमान है । उस संपत्ति में आठवें प्रत्यर्थी द्वारा शॉपिंग मॉल का सन्निर्माण किया जा रहा है । केरल जल प्राधिकरण के सीवर पंपिंग की मुख्य लाइन छठे प्रत्यर्थी की संपत्ति के तिरछे रूप से अवस्थित है । 2013-14 की अवधि के दौरान जब दूसरा प्रत्यर्थी राज्य का मुख्यमंत्री था और प्रत्यर्थी सं. 3 से 5 उस सरकार में उच्च पद धारण करने वाले पदाधिकारी थे तो उस समय सीवर लाइन को छठे प्रत्यर्थी की संपत्ति के एक ओर स्थानांतरित किया गया था जिसके परिणामस्वरूप एक बड़े क्षेत्र में सन्निर्माण संभव हो सका था । वह भूमि, जिसमें सीवर लाइन को स्थानांतरित किया गया वस्तुत: सरकारी भूमि थी, जो केरल जल आपूर्ति और सीवर अधिनियम, 1986 की धारा 16 के अधीन जल प्राधिकरण में निहित थी । प्रत्यर्थी सं. 6 और 7 ने मिथ्या दस्तावेजों का सृजन करके उनके कब्जे वाली भूमि को कम कर दिया था । सीवर लाइन को स्थानांतरित करके प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 ने प्रत्यर्थी सं. 6 से 9 की असम्यक् धनीय फायदा प्राप्त करने में सहायता की थी । पाइप लाइन को स्थानांतरित करने को प्राधिकृत करने वाले आदेश को, प्रतिकूल रिपोर्टों को अधिक्रांत करते हुए तथा विहित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए जारी किया गया था । अभियुक्तों ने अपनी उपरोक्त कार्यवाहियों और लोपों के माध्यम से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "भ्रष्टाचार अधिनयम" कहा गया है) की धारा 13(1) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 120ख के अधीन दंडनीय अपराध किया है ।

2. निम्नलिखित तथ्यों के संबंध में कोई विवाद विद्यमान नहीं है –

अनुलग्नक ए-2 फाइल करने से पूर्व एक अन्य जागरूक नागरिक ने लोक आयुक्त के समक्ष एक शिकायत फाइल की थी । उक्त शिकायत के लंबित रहने के दौरान उप पुलिस अधीक्षक, सतर्कता और भ्रष्टाचार रोधी

ब्यूरो ने वीएसीबी, एसआईयू-1, तिरुवनंतपुरम में भ्रष्टाचार अधिनियम की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) और दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन वर्ष 2017 के अपराध सं. 3 को रजिस्टर किया । कुछ अभियुक्तों ने अनुलग्नक ए-3, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तथा संबद्ध मामलों को वर्ष 2017 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 36735 के माध्यम से उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । वर्तमान मामले के याची, जिसने उस समय तक अनुलग्नक ए-2 के रूप में चिह्नित परिवाद प्रस्तुत किया था, को भी रिट याचिकाओं में एक प्रत्यर्थी के रूप में सम्मिलित किया गया । इस न्यायालय ने आरोपों के संबंध में व्यापक विचार-विमर्श करने के पश्चात् जल प्राधिकरण द्वारा छठे प्रत्यर्थी की भूमि में हित के दावे को कायम रखे जाने योग्य नहीं पाया । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि विवादास्पद संपत्ति के संबंध में इस अभिकथन को स्वीकार भी कर लिया जाए कि वह संपत्ति जल प्राधिकरण की है, तो भी अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा की गई कार्रवाई भ्रष्टाचार अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन नहीं करती है क्योंकि छठी प्रत्यर्थी कंपनी ने सीवर पाइप लाइन को अपनी संपत्ति के एक भाग से दूसरे भाग में स्थनांतरित करके किसी प्रकार का कोई धनीय फायदा प्राप्त नहीं किया है । इन निष्कर्षों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भ्रष्टाचार अधिनियम के अधीन अपराधों के कारण को प्रकट नहीं किया गया है । तद्नुसार, अनुलग्नक ए-3, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तथा उसके आधार पर आगे की जाने वाली कार्यवाहियों को अभिखंडित किया गया । आक्षेपित अनुलग्नक ए-1 आदेश को वर्ष 2017 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 36735 और संबद्ध मामलों में दिए गए निर्णय के आलोक में जारी किया गया था ।

3. अनुलग्नक ए-1 के रूप में चिह्नित आदेश को चुनौती दिए जाने का मुख्य आधार अनुलग्नक ए-2 के रूप में चिह्नित परिवाद को नामंजूर करने में बरता गया अनौचित्य तथा अनुलग्नक ए-3 के रूप में चिह्नित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को इस न्यायालय द्वारा अभिखंडित किया जाना था । याची के अनुसार, अनुलग्नक ए-2 के रूप में चिह्नित परिवाद तथा अनुलग्नक ए-3 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भिन्न-भिन्न हैं और किसी भी दशा में परिवाद को प्रारंभिक जांच किए बिना खारिज नहीं

किया जाना चाहिए था । इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को अपने परिप्रेक्ष्य के समर्थन में निर्दिष्ट किया गया ।

4. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री एस. चंद्रशेखरन नायर और विद्वान् विशेष लोक अभियोजक (सतर्कता) श्रीमती के. बी. सोनी को सुना ।

5. अनुलग्नक ए-3 प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और अनुलग्नक ए-2 परिवाद में किए गए प्रकथनों की तुलना करने पर यह प्रकट होता है कि उनमें लगाए गए अभिकथन सारवान् रूप से एक समान हैं । केवल यह अंतर विद्यमान है कि अनुलग्नक ए-2 परिवाद में अधिक ब्यौरों को अंतर्विष्ट किया गया है और यह अंतर इस सुस्थापित विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए सारवान् नहीं है कि किसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को सभी तथ्यों का सार-संग्रह होना अनिवार्य नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में यदि याची की प्रार्थना को मंजूर किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप तथ्यों के एक समान सेट के आधार पर एक द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर करनी होगी ।

6. तथ्यों के एक समान सेट के आधार पर कोई द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर करने की वैधता के सम्बंध में माननीय उच्चतम न्यायालय ने **टी. टी. एंटनी** बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामले में विस्तारपूर्वक विचार किया था । निर्णय के पैरा 20 और 27, जो संदर्भनात्मक रूप से सुसंगत है, यहां नीचे दिए गए हैं :–

> "20. ऊपर की गई चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 154, 155, 156, 157, 162, 169, 170 और 173 के उपबंधों की स्कीम के अधीन संज्ञेय अपराध के कारण के संबंध में केवल प्रथम सूचना ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 की अपेक्षाओं का समाधान करती है । इस प्रकार किसी मामले में द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट नहीं हो सकती और परिणामत: समान संज्ञेय अपराध या समान घटना,

---

[1] (2014) 2 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 187.

[2] (2001) 6 एस. सी. सी. 181 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2637.

जिसके कारण एक या अधिक संज्ञेय अपराध उद्भूत होते हैं, के संबंध में प्रत्येक पश्चात्वर्ती सूचना की प्राप्ति पर नए सिरे से अन्वेषण नहीं किया जा सकता । किसी संज्ञेय अपराध या किसी संज्ञेय अपराध या अपराधों को उद्भूत करने वाली किसी घटना के बारे में जानकारी की प्राप्ति पर तथा थाना हाऊस डायरी में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रविष्टि करने के पश्चात् किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को न केवल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में रिपोर्ट किए गए अपराध के संबंध में अन्वेषण करना होता है अपितु उसे अन्य सहबद्ध ऐसे अपराधों के संबंध में भी जांच-पड़ताल करनी होती है, जिन्हें उसी संव्यवहार के अनुक्रम में या समान घटना के दौरान कारित किया गया हो और थाने के प्रभारी अधिकारी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 में उपबंधित किए गए अनुसार एक या अधिक रिपोर्टें फाइल करनी होती हैं ।

***　　　***　　　***

27. न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21 के अधीन नागरिकों के मूलभूत अधिकारों तथा पुलिस की किसी संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की व्यापक शक्ति के बीच न्यायोचित संतुलन निर्धारित करना चाहिए । इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 की उपधारा (8) पुलिस को आगे और अन्वेषण करने, और अधिक साक्ष्य (मौखिक और दस्तावेजी दोनों प्रकार का) प्राप्त करने हेतु सशक्त करती है और उसके पश्चात् वह मजिस्ट्रेट को इस संबंध में रिपोर्ट या रिपोर्टें अग्रेषित करता है । **नारंग** [(1979) 2 एस. सी. सी. 323 = 1979 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 479 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1791] वाले मामले में हालांकि यह संप्रेक्षण किया गया था कि किसी भी मामले में आगे और अन्वेषण का संचालन करने के संबंध में यह उपयुक्त होगा कि इस संबंध में न्यायालय से अनुमति प्राप्त की जाए । तथापि, अन्वेषण किए जाने की व्यापक शक्ति पुलिस को, उत्तरवर्ती प्रथम इत्तिला रिपोर्टें, चाहे उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अधीन अंतिम रिपोर्ट फाइल करने से पूर्व या उसके पश्चात् फाइल किया गया हो, को

फाइल किए जाने के परिणामस्वरूप किसी नागरिक को प्रत्येक बार समान घटना, जिससे एक या अधिक संज्ञेय अपराध उद्भूत होते हों, के संबंध में अन्वेषणाधीन करने की अनुमति नहीं देती । यह स्पष्ट रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 और 156 के विस्तार क्षेत्र से परे है और यह अन्वेषण किए जाने संबंधी कानूनी शक्ति के दुरुपयोग के तत्समान है । हमारे मत में, जहां पहली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में या तो अन्वेषण का संचालन किया जा रहा है या जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अधीन मजिस्ट्रेट को अंतिम रिपोर्ट अग्रेषित कर दी गई है, वहां द्वितीय या उत्तरवर्ती प्रथम इत्तिला रिपोर्टों, जो समान या संबद्ध संज्ञेय अपराध, जिसे अभिकथित रूप से समान संव्यवहार के अनुक्रम में कारित किया गया है, से संबंधित फाइल किया गया कोई प्रति-मामला नहीं है, के आधार पर नया अन्वेषण आरंभ किए जाने का मामला एक ऐसा समुचित मामला होगा जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है ।"

ऊपरउल्लिखित सिद्धांत के आधार पर विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने न्यायोचित रूप से अनुलग्नक ए-2 परिवाद को नामंजूर किया था क्योंकि समान अभिकथनों के आधार पर कोई द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्टर नहीं की जा सकती, वह भी उस समय जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को गुणागुण के आधार पर अभिखंडित कर दिया गया हो ।

7. **ललिता कुमारी** (उपरोक्त) वाले मामले पर आधारित प्रतिवाद भी वर्तमान मामले में उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सांविधानिक खंडपीठ द्वारा उक्त मामले में पुलिस के किसी संज्ञेय अपराध/अपराधों के कारण के संबंध में सूचना की प्राप्ति पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को रजिस्टर करने के कर्तव्य से संबंधित प्रश्न पर विचार किया गया था । तथ्यों के एक समान सेट के आधार पर द्वितीय प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को रजिस्टर करने की वैधता या अन्यथा से संबंधित कोई प्रश्न उक्त मामले में विचारार्थ सामने नहीं आया था । प्रारंभिक जांच-पड़ताल के प्रश्न पर **ललिता कुमारी** (उपरोक्त) वाले मामले में निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला गया था :–

"120.6 किस किस्म और किस प्रकृति के मामलों में प्रारंभिक जांच-पड़ताल की जा सकती है, यह प्रश्न प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है । ऐसे मामलों, जिनमें प्रारंभिक जांच-पड़ताल की जा सकती है, का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है –

(क) विवाह संबंधी विवाद/कुटुंब विवाद

(ख) वाणिज्यिक अपराध

(ग) चिकित्सीय उपेक्षा संबंधी मामले

(घ) भ्रष्टाचार संबंधी मामले

(ङ) ऐसे मामले, जिनमें दांडिक अभियोजन आरंभ करने में असामान्य विलंब/अतिविलंब हुआ है, उदाहरणार्थ विलंब के कारणों को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट किए बिना मामले को रिपोर्ट करने में तीन मास से अधिक अवधि का विलंब ।

पूर्वोक्त वर्गीकरण केवल दृष्टांत स्वरूप है और उसमें सभी परिस्थितियों को सम्मिलित नहीं किया गया है, जिनके कारण प्रारंभिक जांच-पड़ताल की जा सकती है ।"

मेरी सुविचारित राय में उपरोक्त निष्कर्ष को ऐसी घोषणा के रूप में नहीं माना जा सकता कि ऐसे मामलों में भी, जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को पहले से ही रजिस्टर कर दिया गया हो, वहां समान अभिकथनों को अंतर्विष्ट करते हुए किसी पश्चात्वर्ती शिकायत के आधार पर आबद्धकर रूप से प्रारंभिक जांच-पड़ताल की जानी चाहिए ।

ऊपर उल्लिखित कारणों से अनुलग्नक ए-1 को दी गई चुनौती असफल होती है ।

परिणामत:, दांडिक प्रकीर्ण याचिका को खारिज किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

पु.

केशव कुमार कतेन्द्र

बनाम

रेनाल्ड पीटर

(2015 की दांडिक आर. आर. सं. 947)

तारीख 19 मई, 2021

न्यायमूर्ति राजेन्द्र चंद्र सिंह सामंत

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 और धारा 139 – चैक का अनादर – परिवादी द्वारा यह आरोप लगाया जाना कि प्रत्यर्थी ने उससे कतिपय धनराशि उधार ली थी और उसका प्रतिदाय करते हुए उसने उसे एक चैक उपलब्ध कराया था जिसे बैंक में प्रस्तुत किए जाने पर बैंक द्वारा उसका अनादर किया गया – परिवादी द्वारा सभी प्रक्रियात्मक कार्यवाहियों को पूरा किया जाना तथा प्रत्यर्थी द्वारा भी उपरोक्त प्रक्रियाओं तथा इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद न उठाया जाना कि उसने परिवादी से धनराशि उधार ली थी – प्रत्यर्थी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा में प्रस्तुत साक्ष्यों के माध्यम से यह साबित करने का प्रयास करना कि उसने लिए गए ऋण का प्रतिदाय कर दिया था और उपरोक्त चैक जिसका अनादर हुआ है वह उसके द्वारा प्रतिभूति के रूप में परिवादी को उपलब्ध कराया गया था – प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों का परिवादी के पक्षकथन से प्रत्यक्ष संबंध न होना और इसके प्रतिकूल उससे यह दर्शित होना कि वे पक्षकारों के बीच किसी भिन्न संव्यवहार से संबद्ध है – विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी/अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपलब्ध उपधारणा का खंडन नहीं करता है और इसलिए दोषसिद्धि उचित प्रतीत होती है और उसमें किसी भी प्रकार का कोई हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

वर्तमान मामले का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस

प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी रेनाल्ड पीटर ने इस आधार पर अधिनियम की धारा 138 के अधीन आवेदक के विरुद्ध एक परिवाद फाइल किया था कि आवेदक ने प्रत्यर्थी से 1,00,000/- रुपए की रकम उधार ली थी और उसका प्रतिदाय करने के लिए उसने उस रकम का एक चैक उसे तारीख 21 नवम्बर, 2009 को दिया था । उक्त चैक को प्रत्यर्थी द्वारा संदाय हेतु ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स, शाखा धमतारी में विद्यमान अपने खाते में तारीख 2 दिसम्बर, 2009 को प्रस्तुत किया गया था, किन्तु उक्त चैक का अनादर कर दिया गया । जिसके उपरांत प्रत्यर्थी ने तारीख 11 दिसम्बर, 2009 को आवेदक को एक सूचना भेजी, जिसे आवेदक द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त किया गया था, किन्तु आवेदक ने चैक में अंकित रकम का संदाय नहीं किया । जिसके पश्चात्, प्रत्यर्थी ने उक्त प्रतिवाद फाइल किया । आवेदक ने उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप के अंतर्वस्तु से इनकार करने का अभिवाक् किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने आवेदक के विरुद्ध विचारण को पूरा किया तथा उसने तारीख 28 नवम्बर, 2013 को निर्णय पारित किया, जिसके द्वारा आवेदक को अधिनियम की धारा 138 के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया तथा उसे छह मास के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया और उस पर पांच हजार रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया गया । आवेदक ने उक्त आदेश से व्यथित होकर उक्त निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील फाइल की, जिसे विद्वान् अपीली अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा निपटाया गया और उन्होंने अपने आक्षेपित निर्णय के माध्यम से आवेदक के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि के निर्णय की पुष्टि की, तथापि, विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश को उपांतरित किया गया । आवेदक के विरुद्ध अधिरोपित कारावास के दंड को अपास्त किया गया और उसे यह आदेश दिया गया कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(3) के अधीन प्रत्यर्थी को 1,25,000/- रुपए की राशि का प्रतिकर के रूप में संदाय करे और साथ ही यह शर्त भी अधिरोपित की गई कि प्रतिकर की रकम का संदाय न किए जाने की दशा में आवेदक को तीन मास का साधारण कारावास भोगना होगा । उक्त निर्णय से व्यथित होकर आवेदक ने आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए वर्तमान पुनरीक्षण याचिका फाइल

की है । उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा न्यायालय के सामने जो अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया गया है वह यह साबित करने के लिए है कि आवेदक ने प्रत्यर्थी से अगस्त, 2008 मास के दौरान 50,000/- रुपए की राशि उधार ली थी और उसने उसका पूर्ण रूप से प्रतिदाय कर दिया है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के पक्ष की ओर से इस प्रभाव का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि चैक को तारीख 21 नवम्बर, 2009 को आहरित किया गया था और आवेदक ने उस तारीख से लगभग 3 माह पूर्व प्रत्यर्थी से उधार में रकम प्राप्त की थी । अतः, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को परिवाद मामले के साक्ष्य के साथ नहीं जोड़ा जा सकता जिससे यह दर्शित होता है कि आवेदक और प्रत्यर्थी के बीच भिन्न संव्यवहार किया गया था । विचारण न्यायालय ने आवेदक की ओर से प्रस्तुत किए गए अभिसाक्ष्य को विश्वसनीय नहीं माना और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपलब्ध उपधारणा का खंडन नहीं किया गया है । अपीली न्यायालय ने भी समान निष्कर्षों को अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिरक्षा परिवाद मामले को विवादित ठहराने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहा है । इस न्यायालय ने भी यहां ऊपर यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिरक्षा पक्ष उस संव्यवहार से संबद्ध नहीं है, जो प्रत्यर्थी की ओर से परिवाद फाइल किए जाने का मुख्य आधार था । अतः, उच्च न्यायालय का मत यह है कि इस पुनरीक्षण याचिका में कोई गुण विद्यमान नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है । तद्नुसार पुनरीक्षण याचिका खारिज की जाती है । (पैरा 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2019] (2019) 5 एस. सी. सी. 418 =
ए. आई. आर. 2019 एस. सी. 1983 :
बासालिंगप्पा बनाम **मुदीबासाप्पा** ; 5

[2009] (2009) 14 एस. सी. सी. 398 =
ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2089 (क्रिमिनल) :
एम. डी. थॉमस बनाम **पी. एस. जलील और अन्य ।** 5

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2015 की दांडिक आर. आर. सं. 947.

वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका, विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय), धमतारी, जिला धमतारी द्वारा वर्ष 2013 की दांडिक अपील सं. 114 में पारित तारीख 6 अक्तूबर, 2015 के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है ।

याची की ओर से श्री बी. पी. सिंह, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ऋषि राहुल सोनी, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजेन्द्र चंद्र सिंह सामंत – दोनों पक्षों को सुना ।

वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका, विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (त्वरित निपटान न्यायालय), धमतारी, जिला धमतारी द्वारा वर्ष 2013 की दांडिक अपील सं. 114 में पारित तारीख 6 अक्तूबर, 2015 के उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 138 के अधीन आवेदक के विरुद्ध दोषसिद्धि के निर्णय की पुष्टि की थी, तथापि, आवेदक के विरुद्ध अधिरोपित दंडादेश को उपांतरित किया गया था ।

2. प्रत्यर्थी रेनाल्ड पीटर ने इस आधार पर अधिनियम की धारा 138 के अधीन आवेदक के विरुद्ध एक परिवाद फाइल किया था कि आवेदक ने प्रत्यर्थी से 1,00,000/- रुपए की रकम उधार ली थी और उसका प्रतिदाय करने के लिए उसने उस रकम का एक चैक उसे तारीख 21 नवम्बर, 2009 को दिया था । उक्त चैक को प्रत्यर्थी द्वारा संदाय हेतु ओरिएण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स, शाखा धमतारी में विद्यमान अपने खाते में तारीख 2 दिसम्बर, 2009 को प्रस्तुत किया गया था, किन्तु उक्त चैक का अनादर कर दिया गया । जिसके उपरांत प्रत्यर्थी ने तारीख

11 दिसम्बर, 2009 को आवेदक को एक सूचना भेजी, जिसे आवेदक द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त किया गया था, किन्तु आवेदक ने चैक में अंकित रकम का संदाय नहीं किया । जिसके पश्चात्, प्रत्यर्थी ने उक्त प्रतिवाद फाइल किया ।

3. आवेदक ने उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप के अंतर्वस्तु से इनकार करने का अभिवाक् किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने आवेदक के विरुद्ध विचारण को पूरा किया तथा उसने तारीख 28 नवम्बर, 2013 को निर्णय पारित किया, जिसके द्वारा आवेदक को अधिनियम की धारा 138 के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया तथा उसे छह मास के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया और उस पर पांच हजार रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया गया । आवेदक ने उक्त आदेश से व्यथित होकर उक्त निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील फाइल की, जिसे विद्वान् अपीली अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा निपटाया गया और उन्होंने अपने आक्षेपित निर्णय के माध्यम से आवेदक के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि के निर्णय की पुष्टि की, तथापि, विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश को उपांतरित किया गया । आवेदक के विरुद्ध अधिरोपित कारावास के दंड को अपास्त किया गया और उसे यह आदेश दिया गया कि वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 357(3) के अधीन प्रत्यर्थी को 1,25,000/- रुपए की राशि का प्रतिकर के रूप में संदाय करे और साथ ही यह शर्त भी अधिरोपित की गई कि प्रतिकर की रकम का संदाय न किए जाने की दशा में आवेदक को तीन मास का साधारण कारावास भोगना होगा ।

4. आवेदक की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई है कि आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण, अविधिपूर्ण तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रतिकूल है । आवेदक ने प्रत्यर्थी से केवल 50,000/- रुपए की रकम उधार स्वरूप प्राप्त की थी और उसने उक्त ऋण की पूर्ण रकम का प्रतिसंदाय कर दिया है । आवेदक ने ऋण की रकम के प्रति एक प्रतिभूति के रूप में प्रत्यर्थी को एक ब्लैंक चैक उपलब्ध कराया था । आवेदक ने विचारण न्यायालय के

समक्ष समुचित साक्ष्य प्रस्तुत करके उक्त तथ्यों को साबित किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय और अपीली न्यायालय, दोनों उक्त समुचित साक्ष्य को उसके उचित परिप्रेक्ष्य में विचार में लेने में असफल रहे हैं ।

5. वर्तमान मामले की कार्यवाहियों के दौरान उच्चतम न्यायालय द्वारा **एम. डी. थॉमस** बनाम **पी. एस. जलील और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया है, उक्त मामले में अभियुक्त पर मांग सूचना की प्रभावी रूप से तामील नहीं की गई थी और इस कारणवश उसे दोषमुक्त कर दिया गया था । इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **बासालिंगप्पा** बनाम **मुदीबासाप्पा**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह भार अभियोजन पक्ष पर है कि वह सभी सुसंगत संदेहों से परे अपने पक्षकथन को साबित करे, तथापि, अभियुक्त को अपना पक्षकथन केवल संभावनाओं की प्रधानता की सीमा तक साबित करना होता है । अतः, यह प्रार्थना की गई थी कि याचिका को मंजूर किया जाए और आवेदक के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाए ।

6. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल ने ऊपर इस प्रकार दी गई दलीलों का विरोध किया और यह दलील प्रस्तुत की है कि विचारण न्यायालय और अपीली न्यायालय द्वारा आवेदक को अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध करने के लिए सिद्धदोष ठहराकर कोई त्रुटि नहीं की है । यद्यपि, आवेदक ने अपने मामले के संबंध में इस प्रतिरक्षा को प्रस्तुत किया है कि उसने चैक को उसके द्वारा प्राप्त किए गए ऋण के लिए प्रतिभूति के रूप में उपलब्ध कराया था, किन्तु उसने इस तथ्य को साबित नहीं किया है, अतः, आक्षेपित निर्णय कायम रखे जाने योग्य है और उसमें किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । अतः, उन्होंने पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज करने का अनुरोध किया ।

---

[1] (2009) 14 एस. सी. सी. 398 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2089 (क्रिमिनल).

[2] (2019) 5 एस. सी. सी. 418 = ए. आई. आर. 2019 एस. सी. 1983.

7. दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया । आक्षेपित निर्णय की विधिक स्थिति, औचित्य तथा उसके सही होने के संबंध में पता लगाने हेतु संवीक्षा करने के दौरान पुनरीक्षण याचिका में केवल एक ही चीज की परीक्षा किया जाना अपेक्षित है कि क्या आवेदक ने अपनी प्रतिरक्षा में प्रस्तुत बिन्दु के संबंध में समुचित साक्ष्य प्रस्तुत किया है, जिसे संभावनाओं की प्रबलता के मानदंड पर पर्याप्त माना जा सकता हो । इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि आवेदक ने प्रत्यर्थी से धन उधार स्वरूप प्राप्त किया था और उसने प्रत्यर्थी को एक चैक भी प्रदान किया था । चैक के अनादर होने के तथ्य, सूचना को जारी किए जाने, सूचना को प्राप्त किए जाने और चैक की रकम का संदाय न किए जाने संबंधी तथ्यों के संबंध में भी आवेदक द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कोई विवाद नहीं उठाया गया है ।

8. रेनाल्ड पीटर (अभि. सा. 1) प्रत्यर्थी ने यह कथन किया है कि आवेदक ने उसके पक्ष में 1,00,000/- रुपए की रकम का एक चैक तारीख 21 नवम्बर, 2009 को जारी किया था, जो प्रदर्श पी/1 के रूप में चिह्नित है और जिसका बैंक द्वारा अनादर किया गया । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने यह कथन किया है कि उसने आवेदक को चैक की तारीख से लगभग 3 माह पूर्व नकद ऋण उपलब्ध कराया था । इसके अतिरिक्त, उसने आवेदक के पक्ष की ओर से प्रस्तुत किए गए अन्य प्रतिकूल सुझावों से इनकार किया । उसने इस तथ्य से भी इनकार किया कि आवेदक द्वारा उसे चैक ऋण की प्रतिभूति के रूप में उपलब्ध कराया गया था । प्रत्यर्थी ने इस तथ्य से भी इनकार किया कि आवेदक ने उससे केवल 50,000/- रुपए की रकम उधार में ली थी और उसने उसे उक्त पूरी रकम का प्रतिदाय कर दिया था । आवेदक ने अपनी प्रतिरक्षा में, कतिपय प्रतिरक्षा साक्षियों की परीक्षा की है । प्रभू राम (प्रति. सा. 1) ने घटना के संबंध में यह कथन किया है कि आवेदक ने उसकी उपस्थिति में दिसम्बर, 2008 मास के दौरान आवेदक को 10,000/- रुपए की रकम का संदाय किया था । झावर लाल (प्रति. सा. 2) ने भी इसी प्रकार का कथन प्रस्तुत किया है कि आवेदक ने उसकी उपस्थिति

में प्रत्यर्थी को 20,000/- रुपए का संदाय किया था किन्तु उस संदाय की तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है । घनश्याम सिन्हा (प्रति. सा. 3) ने भी इसी प्रकार का कथन किया है कि फरवरी, 2009 मास के दौरान वह उस समय आवेदक के साथ था जब उसने प्रत्यर्थी को 20,000/- रुपए की रकम का संदाय किया था । उसने यह भी कथन किया है कि आवेदक ने प्रत्यर्थी से कुल 50,000/- रुपए की राशि उधार स्वरूप प्राप्त की थी, जिसके लिए उसने प्रतिभूति के रूप में एक ब्लैंक चैक प्रत्यर्थी को उपलब्ध कराया था । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रति. सा. 3 ने प्रतिकूल सुझावों से इनकार किया और वह आवेदक द्वारा उपलब्ध कराए गए चैक तथा उसके बैंक खाते के ब्यौरे बताने में असफल रहा था ।

9. गौतम कर (प्रति. सा. 4) ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी ने आवेदक के पक्ष में एक चैक जारी किया था । यह चैक भारतीय स्टेट बैंक पर आहरित था और उसे आवेदक के पक्ष में जारी किया गया था जिसका आवेदक द्वारा तारीख 12 अगस्त, 2008 को नकदीकरण कराया गया था । यह चैक 50,000/- रुपए की रकम का था और वह आवेदक तथा प्रत्यर्थी के बीच हुए किन्हीं अन्य संव्यवहारों से अनभिज्ञ था । आवेदक ने प्रति. सा. 5 के रूप में अपने स्वयं की परीक्षा की है और उसने अपनी परीक्षा के दौरान यह कथन किया है कि उसने तारीख 16 अगस्त, 2008 को प्रत्यर्थी से 50,000/- रुपए की रकम उधार ली थी और उसके लिए उसने प्रतिभूति के रूप में प्रत्यर्थी को एक ब्लैंक चैक उपलब्ध कराया था । उसने किस्तों में प्रत्यर्थी को, उधार ली गई पूर्ण रकम का प्रतिदाय कर दिया है और उसने फरवरी, 2009 के पश्चात् प्रत्यर्थी से किसी भी रकम को ऋण स्वरूप प्राप्त नहीं किया है । उसके विरुद्ध फाइल किया गया परिवाद मिथ्या है और अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए प्रतिकूल सुझावों से इनकार किया है ।

10. प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा न्यायालय के सामने जो अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया गया है वह यह साबित करने के लिए है कि आवेदक ने प्रत्यर्थी से अगस्त, 2008 मास के दौरान 50,000/- रुपए की राशि उधार ली थी

और उसने उसका पूर्ण रूप से प्रतिदाय कर दिया है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के पक्ष की ओर से इस प्रभाव का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि चैक को तारीख 21 नवम्बर, 2009 को आहरित किया गया था और आवेदक ने उस तारीख से लगभग 3 माह पूर्व प्रत्यर्थी से उधार में रकम प्राप्त की थी । अतः, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को परिवाद मामले के साक्ष्य के साथ नहीं जोड़ा जा सकता जिससे यह दर्शित होता है कि आवेदक और प्रत्यर्थी के बीच भिन्न संव्यवहार किया गया था । विचारण न्यायालय ने आवेदक की ओर से प्रस्तुत किए गए अभिसाक्ष्य को विश्वसनीय नहीं माना और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपलब्ध उपधारणा का खंडन नहीं किया गया है । अपीली न्यायालय ने भी समान निष्कर्षों को अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिरक्षा परिवाद मामले को विवादित ठहराने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहा है । इस न्यायालय ने भी यहां ऊपर यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिरक्षा पक्ष उस संव्यवहार से संबद्ध नहीं है, जो प्रत्यर्थी की ओर से परिवाद फाइल किए जाने का मुख्य आधार था । अतः, मेरा मत यह है कि इस पुनरीक्षण याचिका में कोई गुण विद्यमान नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है ।

11. तद्नुसार पुनरीक्षण याचिका खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की जाती है ।

पु.

पी. बी. कोहली

बनाम

केशव वर्मा और अन्य

(2013 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 52)

तारीख 28 जनवरी, 2021

न्यायमूर्ति संजय धर

रणबीर दंड संहिता, 1989 (1989 का 12) – धारा 498क, 306 और 34 – पति और उसके एक मित्र तथा उसके अन्य निकट नातेदारों पर यह आरोप लगाया जाना कि उन्होंने पीड़ित महिला/मृतका से दहेज की मांग की और उस पर शारीरिक रूप से हमला किया तथा उस पर किरोसिन तेल तथा अम्ल को छिड़ककर उसके शरीर को आग लगा दी, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई – वर्तमान मामले में केवल एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथन का विद्‌यमान होना – उक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का बाल साक्षी होना और उसके द्‌वारा प्रस्तुत साक्ष्य/कथनों में अनेक प्रकार के विरोधाभासों और विंसगतियों का विद्‌यमान होना – बाल साक्षी द्‌वारा प्रस्तुत साक्ष्य के समर्थन में कोई अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य उपलब्ध न होना – मृतका के अन्य नातेदारों का घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी न होना और उनके द्‌वारा घटना के संबंध में प्रस्तुत साक्ष्य को केवल अनुश्रुत प्रकृति का साक्ष्य माना जाना – स्वतंत्र साक्षियों द्‌वारा क्रूरता और दहेज की मांग का समर्थन न किया जाना – मृतका के अप्राप्तवय पुत्र, किराएदार और पड़ोसी द्‌वारा यह कथन किया जाना कि पति और पत्नी के बीच मधुर संबंध विद्‌यमान थे – बाल साक्षी, चूंकि अपने ननिहाल में निवास कर रही है इसलिए उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना का विद्‌यमान होना – मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा सामग्री पर विचार करने के पश्चात्‌ विचारण न्यायालय द्‌वारा दिया गया दोषमुक्ति का निर्णय उचित प्रतीत होता है और यह कोई ऐसा आपवादिक मामला नहीं है, जिसमें

उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय में कोई हस्तक्षेप करे ।

वर्तमान पुनरीक्षण याचिका का निपटारा करने हेतु संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 5 मई, 2005 को एक महिला, अर्थात् ममता देवी को जीएमसी अस्पताल, जम्मू में दाखिल किया गया क्योंकि उसे अग्निदाह संबंधी क्षतियां कारित हुई थी । उक्त क्षतियों के कारण तारीख 11 मई, 2005 को उक्त महिला की मृत्यु हो गई और पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 174 के अधीन मृत्युसमीक्षा संबंधी कार्यवाहियों को आरंभ किया । इन कार्यवाहियों के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 175 के अधीन साक्षियों के कथनों को लेखबद्ध किया गया । अभियोजन साक्षी बाघिशा, जो मृतका की अप्राप्तवय पुत्री है, ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 175 के अधीन लेखबद्ध कराए गए अपने कथन में यह कहा है कि प्रत्यर्थी ने (1) जगदीश, (2) अजय, (3) शशि, (4) लवली, (5) रवि, (6) यशपाल और (7) राजू की मौनानुकुलता के साथ मृतका पर डंडों के साथ हमला किया और उसके पश्चात् उसके शरीर पर किरोसिन तेल और अम्ल छिड़ककर उसके शरीर को आग लगा दी । पूर्वोक्त कथन के आधार पर रणबीर संहिता की धारा 302/120ख/498क के अधीन अपराध कारित करने के लिए एक मामला दर्ज किया गया । मामले के अन्वेषण के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथनों को लेखबद्ध किया गया किन्तु किसी भी साक्षी ने अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत किए गए कथन के अनुसार हुई घटना का समर्थन नहीं किया और न ही मृतका द्वारा घटना के समय पहने हुए वस्त्रों से अम्ल का कोई नमूना/अंश मिला । अभियोजन साक्षी बाघिशा को, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन कथन लेखबद्ध करने हेतु मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया तथापि, मजिस्ट्रेट द्वारा यह संप्रेक्षण किया गया कि उसके कथन को लेखबद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी समझ अभी परिपक्व नहीं है । तद्नुसार, अन्वेषण अभिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि रणबीर संहिता की धारा 302/120ख के अधीन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता । तथापि, छान-बीन के पश्चात् अन्वेषण अभिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रत्यर्थी सं. 1,

अर्थात् मृतका का पति, मृतका और उसके माता-पिता से दहेज की मांग करता था । उसके पश्चात्, यह तथ्य भी सामने आया कि प्रत्यर्थी सं. 1 आदतन शराबी था और मृतका को उसका यह व्यवहार नापसंद था । यह तथ्य भी सामने आया कि प्रत्यर्थी सं. 2, जो प्रत्यर्थी सं. 1 का घनिष्ठ मित्र है, प्रायः, प्रत्यर्थी सं. 1 के घर आता था और वे दोनों मिलकर प्रत्यर्थी सं. 1 के घर मदिरापान करते थे, जिसके कारण मृतका अक्सर नाराज हो जाती थी । अन्वेषण से यह तथ्य भी प्रकट हुआ कि घटना की तारीख को दोनों प्रत्यर्थी नशे की हालात में प्रत्यर्थी सं. 1 के घर मौजूद थे और मृतका यह बर्दाश्त नहीं कर सकी और इसके परिणामस्वरूप उसने स्वयं का अग्निदाह कर लिया । तद्नुसार, अन्वेषण अभिकरण ने दोनों प्रत्यर्थियों के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/498क/34 के अधीन अपराध कारित करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र फाइल किया । प्रारंभ में, विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/34 के अधीन अपराध करने के लिए आरोपों को विरचित किया, किन्तु उसके पश्चात् इस न्यायालय द्वारा दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 88/2005 में तारीख 4 सितम्बर, 2006 को पारित निदेशों के अनुसरण में प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/498क के अधीन अपराधों के लिए तथा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/498क/34 के अधीन अपराध करने के लिए आरोप विरचित किए गए । विद्वान् विचारण न्यायालय ने 12 अभियोजन साक्षियों और एक प्रतिरक्षा साक्षी द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्यों/कथनों को लेखबद्ध करने के पश्चात् प्रत्यर्थियों को इस आधार पर दोषमुक्त किया कि अभियोजन के पक्षकथन में गंभीर कमियां विद्यमान हैं । उक्त निर्णय से व्यथित होकर मृतका के पिता ने उच्च न्यायालय के समक्ष विचारण न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए वर्तमान पुनरीक्षण याचिका फाइल की है । उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सभी सामग्री पर विचार करने के पश्चात् पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, याची ने जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 435 और 439 के अधीन इस न्यायालय की पुनरीक्षण

अधिकारिता का अवलंब लिया है । सामान्य रूप से ऐसे किसी मामले में, जिसमें किए गए किसी आदेश के संबंध में राज्य की ओर से अपील फाइल की जा सकती है, किसी प्रकार की दांडिक पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, उच्च न्यायालय में जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 435 के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय उसमें, उसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर अवस्थित किसी निचले दांडिक न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों के अभिलेख को मंगाने और उसकी समीक्षा करने की अधिकारिता अंतर्निहित है जिसका प्रयोजन यह है कि उच्च न्यायालय स्वयं का किसी निचले न्यायालय के निष्कर्षों, दंडादेश या आदेश के सही, विधिपूर्ण या न्यायोचित होने के संबंध में समाधान कर सके । इस प्रकार, कोई उच्च न्यायालय सीमित आधारों पर ही अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप कर सकता है । किसी बाल साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालयों से यह अपेक्षित है कि वे इस बात की संभावना को दूर करें कि ऐसे बालक को सिखाया-पढ़ाया गया है । बालक को सिखाए-पढ़ाए जाने संबंधी किसी अभिकथन या अभियोजन पक्ष की ओर से किसी स्वार्थी प्रयोजनों के लिए बाल साक्षी का उपयोग करने संबंधी अभिकथनों की अनुपस्थिति में न्यायालयों के समक्ष केवल यही विकल्प उपलब्ध होगा कि अभियुक्त को दोषी या निर्दोष अभिनिर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए ऐसे साक्षी के विश्वसनीय प्रतीत होने वाले परिसाक्ष्य का अवलंब ले । विवेक के नियम के रूप में किसी बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य पर गहन संवीक्षा के साथ विचार किया जाना चाहिए और इस प्रकार प्रस्तुत किए गए कथन की गुणवत्ता और उसकी विश्वसनीयता के संबंध में समाधान हो जाने के पश्चात् ही किसी बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत कथन के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह किसी बाल साक्षी के कथन का अवलंब लेने के पूर्व ऐसी संभावनाओं को दूर करे कि बाल साक्षी को सिखाया-पढ़ाया गया है । मृत्युसमीक्षा संबंधी कार्यवाहियों के दौरान लेखबद्ध किए गए कथन में उक्त साक्षी ने दोनों प्रत्यर्थियों और साथ ही प्रत्यर्थी सं. 1 के अन्य नातेदारों को भी अपराध में संलिप्त बताया है और उसने उनके विरुद्ध हत्या करने का आरोप लगाया है । दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 161 के अधीन लेखबद्ध कराए गए अपने कथन में यद्‌यपि बाल साक्षी ने मृतका की हत्या की कहानी को दोहराया है, फिर भी मृत्युसमीक्षा कार्यवाहियों के दौरान लेखबद्ध किए गए अपने कथन से विरोधी कथन प्रस्तुत किया है । जब मामले के अन्वेषण के दौरान उक्त बाल साक्षी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अपना कथन लेखबद्ध किए जाने हेतु मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तो उस समय मजिस्ट्रेट ने इस आधार पर उसके कथन को लेखबद्ध नहीं किया था कि साक्षी के पास अभी परिपक्व समझ विद्‌यमान नहीं है । अंततः, विचारण न्यायालय के समक्ष उक्त बाल साक्षी की परीक्षा की गई । तथापि, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए उसके कथन में मामले के सारवान् पहलुओं के संबंध में विरोधाभास और विसंगतियां विद्‌यमान हैं । अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान बाल साक्षी ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के भाई अजय ने मृतका पर शारीरिक रूप से हमला किया और उसके पश्चात् राजू और यशपाल ने प्रत्यर्थियों के साथ मिलकर मृतका पर किरोसिन तेल छिड़का तथा उसे आग लगा दी । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान, बाल साक्षी ने राजू और यशपाल दोनों को दोषमुक्त करते हुए यह कथन किया है कि उन्होंने किसी प्रकार का कोई अपराध नहीं किया था । बाल साक्षी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि जब उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तो उसने मजिस्ट्रेट को यह कहा था कि उसे वर्तमान मामले के संदर्भ में किसी प्रकार की कोई जानकारी नहीं है । इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य यह दर्शित करता है कि अभियोजन साक्षी बाघिशा अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् से अपनी माता के मायके वाले घर में निवास कर रही है और इसलिए उसकी माता के निकट नातेदारों द्‌वारा उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता । अभियोजन साक्षी बाघिशा के पूर्वोक्त प्रकृति के कथन को ध्यान में रखते हुए उसके कथन का अवलंब लेना अत्यंत असुरक्षित होगा और इसलिए एकमात्र उसके कथन के आधार पर प्रत्यर्थियों को सिद्धदोष नहीं ठहराया जा सकता । विद्‌वान् विचारण न्यायालय ने किसी बाल साक्षी की विश्वसनीयता से संबंधित विधि का उल्लेख करने के पश्चात् सही रूप से अभियोजन साक्षी बाघिशा के कथन का परित्याग किया था और इसलिए विद्‌वान् विचारण न्यायालय ने इस संबंध में अपनाई गई प्रक्रिया में

किसी प्रकार की कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है । जहां तक मृतका के अन्य निकट नातेदारों के कथनों के रूप में अभिलेख पर विद्यमान अन्य साक्ष्य का संबंध है, स्वीकार्य रूप से वे अपराध के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, अत:, मृतका की मृत्यु के कारण के संबंध में प्रस्तुत किए गए उनके कथन केवल अनुश्रुत प्रकृति के हैं और इसलिए वे साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं हैं । इस प्रकार न्यायालय के अभिलेख पर घटना से संबंधित एकमात्र उपलब्ध साक्ष्य अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत किया गया है । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत परिसाक्ष्य विरोधाभासों और विसंगतियों से परिपूर्ण है और साथ ही यह भी संभावना विद्यमान है कि उसे सिखाया-पढ़ाया गया हो । अत:, उसके कथन का अवलंब लेना अत्यंत असुरक्षित और परिसंकटमय है । जहां तक दहेज की मांग के संबंध में मृतका के अन्य नातेदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए कथनों का संबंध है, उक्त कथन तारीखों, दहेज के रूप में मांगी वस्तुओं तथा अन्य विशिष्टियों के बारे में विनिर्दिष्ट नहीं हैं । अत:, विचारण न्यायालय ने सही रूप से उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विश्वास करने से इनकार कर दिया क्योंकि उक्त साक्ष्य अविश्वसनीय और डांवा-डोल प्रकृति के प्रतीत होते हैं । स्वतंत्र साक्षियों के अनुसार, मृतका और प्रत्यर्थी सं. 1 के बीच विद्यमान संबंध मधुर प्रकृति के थे और अभियोजन साक्षी परिमोक्ष, मृतका के अप्राप्तवय पुत्र के अनुसार उसकी माता की मृत्यु गैस के रिसाव के कारण हुई है । स्वतंत्र अभियोजन साक्षियों ने मृतका के नातेदारों द्वारा उनके कथनों में लगाए गए दहेज की मांग संबंधी आरोपों तथा प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा क्रूरता बरतने के आरोपों का समर्थन नहीं किया है । पूर्वोक्त प्रकृति के अभिसाक्ष्य को विचार में लेने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय के पास प्रत्यर्थियों को दोषमुक्त करने के अलावा अन्य कोई विकल्प उपलब्ध नहीं था । वर्तमान मामला कोई ऐसा मामला नहीं है जहां विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सारवान् साक्ष्य की अनदेखी की गई है और न ही यह कोई ऐसा मामला है जहां विद्वान् विचारण न्यायालय ने ऐसे किसी साक्ष्य को प्रस्तुत करने की अनुमति न दी हो, जिसे अभियोजन पक्ष प्रस्तुत करने की वांछा रखता था । वस्तुत:, अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को पूरा करने में आठ वर्ष का समय लिया है । अत:,

यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किए । अत:, वर्तमान मामला ऐसा आपवादिक प्रकृति का मामला प्रतीत नहीं होता है जहां उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करे । पूर्वगामी कारणों से वर्तमान याचिका कायम रखे जाने योग्य प्रतीत नहीं होती क्योंकि उच्च न्यायालय को वर्तमान मामला आपवादिक प्रकृति का ऐसा मामला प्रतीत नहीं होता है, जिसमें उसे अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप करना समुचित प्रतीत हो । तद्नुसार, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को खारिज किया जाता है । इस आदेश की एक प्रति विचारण न्यायालय के मूल अभिलेख के साथ वापस भेज दी जाए । (पैरा 10, 13, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 2 = ए. आई. आर. 2021 एस. सी. 402 : **हरि ओम** उर्फ **हीरो** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	16
[2003]	(2003) 3 एस. सी. सी. 21 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 1088 : **भगवान सिंह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	15
[1998]	(1998) 7 एस. सी. सी. 177 = ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 2726 : **पंछी और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	15
[1968]	ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 707 : **महेन्द्र प्रताप सिंह** बनाम **सरजू सिंह और अन्य** ;	12
[1963]	[1963] 3 एस. सी. आर. 412 = ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1788 : **के. चिन्नास्वामी रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ।	11,13

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2013 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 52.

याची ने वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से प्रधान सेशन न्यायाधीश, ऊधमपुर द्वारा राज्य बनाम केशव वर्मा और अन्य वाले मामले में तारीख 3 अगस्त, 2013 को पारित निर्णय को चुनौती दी है ।

याची की ओर से –

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एस. एस. अहमद

न्यायमूर्ति संजय धर – याची ने वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से विद्वान् प्रधान सेशन न्यायाधीश, ऊधमपुर (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'विचारण न्यायालय' कहा गया है) द्वारा राज्य बनाम केशव वर्मा और अन्य (फाइल सं. 31/सेशन) वाले मामले में रणबीर दंड संहिता, 1989 (1989 का 12) (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'रणबीर संहिता' कहा गया है) की धारा 306/498क/34 के अधीन प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों को दोषमुक्त करते हुए तारीख 3 अगस्त, 2013 को पारित निर्णय को चुनौती दी है ।

2. याची ने यह दावा किया है कि वह मृतका, अर्थात् ममता देवी का पिता है और जिसके बारे में अन्वेषण अभिकरण द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए चालान के अनुसार यह कथन किया गया है कि उसकी मृत्यु, उसे कारित हुई अग्निदाह क्षतियों के कारण तारीख 11 मई, 2005 को हो गई थी । याची ने उस आक्षेपित निर्णय को जिसके द्वारा अभियुक्त/प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को रणबीर संहिता की धारा 306/498क/34 के अधीन अपराध कारित करने के आरोपों से दोषमुक्त किया गया था इन आधारों पर चुनौती दी है कि वर्तमान मामले में अन्वेषण अत्यंत लापरवाह रीति से किया गया है और यह कि अभियोजन पक्ष ने अधिकांश साक्षियों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया और यह कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष विधि के विरुद्ध हैं तथा यह कि विद्वान् विचारण न्यायालय अभियोजन साक्षियों द्वारा प्रस्तुत कथनों को सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित

करने में असफल रहा है, विशेष रूप से अभियोजन साक्षी बाघिशा के कथन का सही मूल्यांकन करने में बुरी तरह असफल रहा है और साथ ही यह भी कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने महत्वपूर्ण साक्ष्य की अनदेखी की है ।

3. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल ने वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को कायम रखने के संबंध में इस आधार पर आरंभिक आक्षेप उठाया है कि राज्य ने दोषमुक्ति के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का विकल्प नहीं लिया है और साथ ही उन्होंने इस आधार पर वर्तमान याचिका को खारिज करने का अनुरोध किया है कि किसी अभियोजन साक्षी द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है, विशिष्ट रूप से उस समय जब जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 में दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध केवल राज्य द्वारा अपील किए जाने संबंधी उपचार हेतु उपबंध किया गया है ।

4. वर्तमान मामले की सुनवाई के लिए अनेक तारीखों को नियत किया गया किन्तु प्रारंभिक रूप से न्यायालय के समक्ष सुनवाई की तारीख पर उपस्थित होने के पश्चात् याची ने सुनवाई की तारीखों पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना बंद कर दिया । वस्तुतः, पिछली पांच लगातार सुनवाई की तारीखों पर याची की ओर से कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ है । अतः, इस मामले को याची की अनुपस्थिति में निपटारे हेतु विचार में लिया जा रहा है ।

5. अभियोजन का पक्षकथन संक्षेप में इस प्रकार है कि तारीख 5 मई, 2005 को एक महिला, अर्थात् ममता देवी (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मृतका' कहा गया है) को जीएमसी अस्पताल, जम्मू में दाखिल किया गया क्योंकि उसे अग्निदाह संबंधी क्षतियां कारित हुई थीं । उक्त क्षतियों के कारण तारीख 11 मई, 2005 को उक्त महिला की मृत्यु हो गई और पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 174 के अधीन मृत्युसमीक्षा संबंधी कार्यवाहियों को आरंभ किया । इन कार्यवाहियों के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 175 के अधीन साक्षियों के कथनों को लेखबद्ध किया गया । अभियोजन साक्षी बाघिशा,

जो मृतका की अप्राप्तवय पुत्री है, ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 175 के अधीन लेखबद्ध कराए गए अपने कथन में यह कहा है कि प्रत्यर्थी ने (1) जगदीश, (2) अजय, (3) शशि, (4) लवली, (5) रवि, (6) यशपाल और (7) राजू की मौनानुकुलता के साथ मृतका पर डंडों के साथ हमला किया और उसके पश्चात् उसके शरीर पर किरोसिन तेल और अम्ल छिड़ककर उसके शरीर को आग लगा दी ।

6. पूर्वोक्त कथन के आधार पर रणबीर संहिता की धारा 302/120ख/498क के अधीन अपराध कारित करने के लिए एक मामला दर्ज किया गया । मामले के अन्वेषण के दौरान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षियों के कथनों को लेखबद्ध किया गया किन्तु किसी भी साक्षी ने अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत किए गए कथन के अनुसार हुई घटना का समर्थन नहीं किया और न ही मृतका द्वारा घटना के समय पहने हुए वस्त्रों से अम्ल का कोई नमूना/अंश मिला । अभियोजन साक्षी बाघिशा को, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन कथन लेखबद्ध करने हेतु मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया तथापि, मजिस्ट्रेट द्वारा यह संप्रेक्षण किया गया कि उसके कथन को लेखबद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी समझ अभी परिपक्व नहीं है । तद्नुसार, अन्वेषण अभिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि रणबीर संहिता की धारा 302/120ख के अधीन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता । तथापि, छान-बीन के पश्चात् अन्वेषण अभिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रत्यर्थी सं. 1, अर्थात् मृतका का पति, मृतका और उसके माता-पिता से दहेज की मांग करता था । उसके पश्चात्, यह तथ्य भी सामने आया कि प्रत्यर्थी सं. 1 आदतन शराबी था और मृतका को उसका यह व्यवहार नापसंद था । यह तथ्य भी सामने आया कि प्रत्यर्थी सं. 2, जो प्रत्यर्थी सं. 1 का घनिष्ठ मित्र है, प्रायः, प्रत्यर्थी सं. 1 के घर आता था और वे दोनों मिलकर प्रत्यर्थी सं. 1 के घर मदिरापान करते थे, जिसके कारण मृतका अक्सर नाराज हो जाती थी । अन्वेषण से यह तथ्य भी प्रकट हुआ कि घटना की तारीख को दोनों प्रत्यर्थी नशे की हालात में प्रत्यर्थी सं. 1 के घर मौजूद थे और मृतका यह बर्दाश्त नहीं कर सकी और इसके परिणामस्वरूप उसने स्वयं का

अग्निदाह कर लिया । तद्नुसार, अन्वेषण अभिकरण ने दोनों प्रत्यर्थियों के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/498क/34 के अधीन अपराध कारित करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र फाइल किया ।

7. प्रारंभ में, विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/34 के अधीन अपराध करने के लिए आरोपों को विरचित किया, किन्तु उसके पश्चात् इस न्यायालय द्वारा दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 88/2005 में तारीख 4 सितम्बर, 2006 को पारित निदेशों के अनुसरण में प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/498क के अधीन अपराधों के लिए तथा प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध रणबीर संहिता की धारा 306/498क/34 के अधीन अपराध करने के लिए आरोप विरचित किए गए । विद्वान् विचारण न्यायालय ने 12 अभियोजन साक्षियों और एक प्रतिरक्षा साक्षी द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्यों/कथनों को लेखबद्ध करने के पश्चात् प्रत्यर्थियों को इस आधार पर दोषमुक्त किया कि अभियोजन के पक्षकथन में गंभीर कमियां विद्यमान हैं । इसके अतिरिक्त, आरंभिक प्रक्रम से ही वर्तमान मामले का अन्वेषण अत्यंत लापरवाह रीति से किया गया है ।

8. मामले के गुणागुण की समीक्षा करने से पूर्व हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को कायम रखे जाने के संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा उठाए गए प्रारंभिक आक्षेप के संबंध में विचार करें ।

9. जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417 में अंतर्विष्ट उपबंध यह दर्शित करते हैं कि राज्य का यह प्राथमिक उत्तरदायित्व है कि वह किसी दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल करे और उस दशा में जहां किसी परिवाद के आधार पर संस्थित किसी मामले में दोषमुक्ति के निर्णय को पारित किया जाता है तो उस दशा में अपील, उच्च न्यायालय द्वारा इजाजत मंजूर किए जाने के अधीन रहते हुए परिवादी द्वारा फाइल की जा सकती है । इस प्रकार, किसी पुलिस चालान के आधार पर संस्थित किसी मामले में अपील फाइल करने का

कानूनी अधिकार अनन्य रूप से राज्य का विशेषाधिकार है । यद्यपि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अधीन किसी पीड़ित व्यक्ति को दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु अभी तक जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई तत्समान उपबंध सम्मिलित नहीं किया गया है ।

10. वर्तमान मामले में, याची ने जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 435 और 439 के अधीन इस न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता का अवलंब लिया है । सामान्य रूप से ऐसे किसी मामले में, जिसमें किए गए किसी आदेश के संबंध में राज्य की ओर से अपील फाइल की जा सकती है, किसी प्रकार की दांडिक पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, उच्च न्यायालय में जम्मू-कश्मीर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 435 के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय उसमें, उसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर अवस्थित किसी निचले दांडिक न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों के अभिलेख को मंगाने और उसकी समीक्षा करने की अधिकारिता अंतर्निहित है जिसका प्रयोजन यह है कि उच्च न्यायालय स्वयं का किसी निचले न्यायालय के निष्कर्षों, दंडादेश या आदेश के सही, विधिपूर्ण या न्यायोचित होने के संबंध में समाधान कर सके ।

11. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **के. चिन्नास्वामी रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में पूर्वत्तर निर्णयों का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण में हस्तक्षेप करने के मामले में उच्च न्यायालय की अधिकारिता की सीमा को निम्नलिखित रीति में विहित किया है :–

> "यह सत्य है कि पुनरीक्षण के किसी मामले में उच्च न्यायालय के पास यह शक्ति विद्यमान है कि वह प्राइवेट पक्षकारों के कहने पर भी दोषमुक्ति के किसी आदेश को उस समय अपास्त कर सकता है, जिसे राज्य ने अपील किए जाने के योग्य न समझा हो, किन्तु हमारी राय में इस प्रकार की अधिकारिता का प्रयोग

---

[1] [1963] 3 एस. सी. आर. 412 = ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1788.

किसी उच्च न्यायालय द्वारा केवल आपवादिक मामलों में उस समय किया जाना चाहिए, जब विधि की प्रक्रिया में कोई स्पष्ट त्रुटियां प्रतीत हों या विधि के किसी बिन्दु पर कोई स्पष्ट त्रुटि विद्यमान हो और जिसके परिणामस्वरूप न्याय की घोर हानि हुई हो । धारा 439 की उपधारा (4) किसी उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के किसी निष्कर्ष को दोषसिद्धि में संपरिवर्तित करने से निवारित करती है और किसी उच्च न्यायालय के लिए इसे आवश्यक बनाती है कि वह इस बात को ध्यान में रखे कि वह उस दशा में दोषमुक्ति संबंधी किसी निष्कर्ष को पुन: विचारण का आदेश जारी करते हुए अप्रत्यक्ष पद्धति से दोषमुक्ति के निर्णय में संपरिवर्तित न करे, जब वह स्वयं प्रत्यक्ष रूप से दोषमुक्ति के किसी निष्कर्ष को दोषसिद्धि के किसी निष्कर्ष में परिवर्तित नहीं कर सकता । उक्त धारा का यह उपबंध उच्च न्यायालय की किसी पुनरीक्षण याचिका में दोषमुक्ति के निष्कर्ष को अपास्त करने की शक्ति को निर्बंधित करते हुए इस संबंध में परिसीमाएं विहित करता है और यह उपबंध करता है कि केवल आपवादिक मामलों में इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए । ऐसे आपवादिक मामलों को अवधारित करने के लिए ऐसा कोई मानदंड अधिकथित करना संभव नहीं है, जिसमें सभी आकस्मिकताओं को सम्मिलित किया जा सके । तथापि, हम इस प्रकार के कुछ मामलों को उपदर्शित कर सकते हैं, जो हमारी राय में उपयुक्त मामले हैं जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा किसी पुनरीक्षण याचिका में दोषमुक्ति के किसी निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना न्यायोचित है । ये मामले ऐसे हो सकते हैं, जहां विचारण न्यायालय के पास मामले का विचारण करने की अधिकारिता नहीं है किन्तु फिर भी उसने अभियुक्त को दोषमुक्त किया है या जहां विचारण न्यायालय ने ऐसे किसी साक्ष्य को गलत रूप से समाप्त कर दिया है, जिसे अभियोजन पक्ष प्रस्तुत करने की वांछा रखता था या जहां अपील न्यायालय ने गलत रूप से ऐसे साक्ष्य को अस्वीकार्य के रूप में निर्धारित किया जिसे विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था या जहां विचारण न्यायालय अथवा अपील न्यायालय द्वारा सारवान् साक्ष्य की

अनदेखी की गई है या जहां दोषमुक्ति को अपराध के ऐसे शमन पर आधारित किया गया है, जो विधि की दृष्टि में अविधिमान्य है । ऐसे और समान प्रकृति के अन्य मामलों को आपवादिक प्रकृति के मामले माना जा सकता है, जहां उच्च न्यायालय न्यायोचित रूप से दोषमुक्ति के किसी आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है और ऐसे किसी मामले के संबंध में यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उसने ऐसा कार्य अप्रत्यक्ष रूप से किया है जिसे वह धारा 439(4) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता था" ।

12. उपरोक्त सिद्धांतों को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **महेन्द्र प्रताप सिंह** बनाम **सरजू सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में भी दोहराया गया है ।

13. इस विवाद्यक पर ऊपर उल्लिखित विधिक स्थिति इस तथ्य को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करती है कि कोई उच्च न्यायालय सीमित आधारों पर ही अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप कर सकता है । इस संबंध में यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या वर्तमान मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा **के. चिन्नास्वामी रेड्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित परिस्थितियों में से कोई परिस्थिति लागू होती है । इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह आवश्यक है कि आक्षेपित निर्णय तथा अभिलेख पर विद्यमान सामग्री की समीक्षा की जाए ।

14. जैसा कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है, विचारण न्यायालय के अभिलेख पर साक्ष्य के तीन सेट विद्यमान हैं । एक सेट में मृतका के माता-पिता और निकट नातेदारों का साक्ष्य सम्मिलित है । साक्ष्य का दूसरा सेट मृतका के अप्राप्तवय पुत्र, मृतका के किराएदार और पड़ोसियों के कथनों को सम्मिलित करता है, जबकि साक्ष्य के तीसरे सेट में शासकीय साक्ष्यों के कथन सम्मिलित किए गए हैं । मृतका के माता-पिता और निकट नातेदारों, जिनमें

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 707.

अभियोजन साक्षी बाघिशा, मृतका की अप्राप्तवय पुत्री भी सम्मिलित है, द्वारा प्रस्तुत कथनों के अनुसार उपरोक्त मामला एक हत्या का मामला है और मृतका की हत्या प्रत्यर्थियों द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के अन्य निकट नातेदारों की सहायता से की गई थी । इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य मृतका की अप्राप्तवय पुत्री अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा अपने कथन में प्रस्तुत किया गया है, जिसे मृत्युसमीक्षा कार्यवाहियों के दौरान लेखबद्ध किया गया था और साथ ही उसका उल्लेख न्यायालय के समक्ष लेखबद्ध उसके कथन में भी किया गया है । मृतका के किसी भी अन्य नातेदार ने यह दावा नहीं किया है कि उसने वास्तविक घटना को देखा है । इसलिए हमें अपना ध्यान अभियोजन साक्षी बाघिशा के कथन पर केन्द्रित करना होगा । पुनरीक्षण के आधारों के अनुसार, विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभियोजन साक्षी बाघिशा के कथन का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया है ।

15. जहां तक अभियोजन साक्षी बाघिशा का संबंध है, घटना के समय उसकी आयु 5 वर्ष थी, जिसका तात्पर्य यह है कि वह एक बाल साक्षी है । उसके कथन का विश्लेषण करने से पूर्व हमें किसी बाल साक्षी के कथन की विश्वसनीयता से संबंधित विधि को भली-भांति समझना होगा । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भगवान सिंह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के **पंछी और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में दिए गए पूर्वत्तर मामले का अवलंब लेते हुए किसी बाल साक्षी के कथन की विश्वसनीयता से संबंधित प्रश्न पर विचार किया था और निम्नानुसार संप्रेक्षण किया :–

> "विधि किसी बालक को एक सक्षम साक्षी के रूप में मान्यता प्रदान करती है किन्तु कोई बालक, विशिष्ट रूप से छह वर्ष की अल्प आयु का कोई बालक, जो समझ की अपरिपक्वता के कारण घटना की प्रकृति के संबंध में समुचित राय कायम करने में असमर्थ है, किसी न्यायालय द्वारा किसी ऐसे साक्षी के रूप में नहीं माना

---

[1] (2003) 3 एस. सी. सी. 21 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 1088.

[2] (1998) 7 एस. सी. सी. 177 = ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 2726.

जा सकता जिसके एकमात्र परिसाक्ष्य, अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य का अवलंब लिए बिना दोषसिद्धि का आधार बन सके । ऐसे बालक द्‌वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है क्योंकि उसे सुगमता से सिखाया-पढ़ाया जा सकता है । अत:, न्यायालय को उसके परिसाक्ष्य के संबंध में अन्य साक्ष्य से पर्याप्त पुष्टि प्राप्त करनी चाहिए ।"

16. पुन:, हाल ही के एक मामले में, अर्थात् **हरि ओम** उर्फ **हीरो** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने किसी बाल साक्षी की विश्वसनीयता से संबंधित विधि पर विचार किया है और उससे संबंधित सिद्धांतों को दोहराया है । वर्तमान संदर्भ में, उक्त निर्णय का पैरा 27 सुसंगत है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

"स्वीकार्य रूप से भव्या (अभि. सा. 2), जो घटना के समय केवल चार वर्ष की थी, वर्तमान मामले में एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, जिसे विधि के अनुसार शपथ नहीं दिलाई गई है । घटना का समय और स्थान तथा घटना के समय की परिस्थितियां यह सुझाव देती हैं कि घटना के समय अन्य कोई व्यक्ति प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं हो सकता था । बाल साक्षी द्‌वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य को यू हीं परित्यक्त नहीं किया जा सकता, किन्तु न्यायालय से विवेक के नियम के अनुसार यह अपेक्षित है कि वह बाल साक्षी द्‌वारा प्रस्तुत साक्ष्य की गहराई से संवीक्षा करे और बाल साक्षी द्‌वारा प्रस्तुत किए गए कथन की गुणवत्ता और उसकी विश्वसनीयता के संबंध में समाधान हो जाने के पश्चात् ही बाल साक्षी के अभिसाक्ष्य को स्वीकार करके उसके आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराए । अभि. सा. 2 द्‌वारा प्रस्तुत साक्ष्य को केवल इस आधार पर परित्यक्त नहीं किया जा सकता कि उसकी आयु कम है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अभि. सा. 2 एक बाल साक्षी है, न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह उसके द्‌वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य कि अत्यंत सावधानी से संवीक्षा करे । यदि वह प्रति

---

[1] 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 2 = ए. आई. आर. 2021 एस. सी. 402.

परीक्षा के प्रक्रम को सफलतापूर्वक पार कर लेती है और यदि उसके द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य में कोई दोष नहीं है तो अभियोजन पक्ष सही रूप से यह दावा कर सकता है कि केवल उसके द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया जा सकता है । किसी बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत परिसाक्ष्य की पुष्टि कोई नियम नहीं है, अपितु यह एक सावधानी और विवेक संबंधी उपाय है । किसी बाल साक्षी के कथन में विद्यमान कतिपय विसंगतियों को उसके द्वारा प्रस्तुत परिसाक्ष्य के परित्याग का आधार नहीं बनाया जा सकता । अभिसाक्ष्य में विद्यमान विसंगतियां यदि सारवान् विशिष्टियों से संबंधित नहीं हैं तो उनसे ऐसे किसी बाल साक्षी के परिसाक्ष्य को विश्वसनीयता प्राप्त होगी, जो सामान्य परिस्थितियों के अधीन उन बातों को मिश्रित करने का प्रयास करेगा जो उक्त साक्षी ने देखी और जिनके संबंध में उसने देखने की परिकल्पना की । किसी बाल साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालयों से यह अपेक्षित है कि वे इस बात की संभावना को दूर करें कि ऐसे बालक को सिखाया-पढ़ाया गया है । बालक को सिखाए-पढ़ाए जाने संबंधी किसी अभिकथन या अभियोजन पक्ष की ओर से किसी स्वार्थी प्रयोजनों के लिए बाल साक्षी का उपयोग करने संबंधी अभिकथनों की अनुपस्थिति में न्यायालयों के समक्ष केवल यही विकल्प उपलब्ध होगा कि अभियुक्त को दोषी या निर्दोष अभिनिर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए ऐसे साक्षी के विश्वसनीय प्रतीत होने वाले परिसाक्ष्य का अवलंब ले ।

इस न्यायालय ने पंछी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि किसी बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और उस पर विस्तृत रूप से विचार करते हुए उसकी समीक्षा की जानी चाहिए क्योंकि कोई बालक सदैव अन्य व्यक्तियों द्वारा कही गई बात से सुगमता से प्रभावित हो सकता है और इस प्रकार वह सिखाए-पढ़ाए जाने के लिए एक सुगम साक्षी है । किसी

बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य की, उसका अवलंब लिए जाने से पूर्व पर्याप्त रूप से पुष्टि की जानी चाहिए क्योंकि किसी साक्ष्य का अवलंब लेने से पूर्व उसकी पुष्टि किए जाने संबंधी नियम एक व्यवहारिक विवेक का नियम है न कि विधि का कोई नियम ।

इसी प्रभाव का निर्णय उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** अशोक दीक्षित (ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1062) वाले मामले में भी दिया गया था.."

17. इस विषय पर विधि के संबंध में पूर्वगामी चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेक के नियम के रूप में किसी बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य पर गहन संवीक्षा के साथ विचार किया जाना चाहिए और इस प्रकार प्रस्तुत किए गए कथन की गुणवत्ता और उसकी विश्वसनीयता के संबंध में समाधान हो जाने के पश्चात् ही किसी बाल साक्षी द्वारा प्रस्तुत कथन के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह किसी बाल साक्षी के कथन का अवलंब लेने के पूर्व ऐसी संभावनाओं को दूर करे कि बाल साक्षी को सिखाया-पढ़ाया गया है ।

18. पूर्वोक्त सिद्धांतों के अवलोक में हमें अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत कथन पर नए सिरे से विचार करना होगा, जिसकी आयु घटना के समय केवल पांच वर्ष थी । मृत्युसमीक्षा संबंधी कार्यवाहियों के दौरान लेखबद्ध किए गए कथन में उक्त साक्षी ने दोनों प्रत्यर्थियों और साथ ही प्रत्यर्थी सं. 1 के अन्य नातेदारों को भी अपराध में संलिप्त बताया है और उसने उनके विरुद्ध हत्या करने का आरोप लगाया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन लेखबद्ध कराए गए अपने कथन में यद्यपि बाल साक्षी ने मृतका की हत्या की कहानी को दोहराया है, फिर भी मृत्युसमीक्षा कार्यवाहियों के दौरान लेखबद्ध किए गए अपने कथन से विरोधी कथन प्रस्तुत किया है । जब मामले के अन्वेषण के दौरान उक्त बाल साक्षी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अपना कथन लेखबद्ध किए जाने हेतु मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तो उस समय मजिस्ट्रेट ने इस आधार पर उसके कथन को

लेखबद्ध नहीं किया था कि साक्षी के पास अभी परिपक्व समझ विद्‌यमान नहीं है । अंततः, विचारण न्यायालय के समक्ष उक्त बाल साक्षी की परीक्षा की गई । तथापि, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए उसके कथन में मामले के सारवान् पहलुओं के संबंध में विरोधाभास और विसंगतियां विद्‌यमान हैं । अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान बाल साक्षी ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के भाई अजय ने मृतका पर शारीरिक रूप से हमला किया और उसके पश्चात् राजू और यशपाल ने प्रत्यर्थियों के साथ मिलकर मृतका पर किरोसिन तेल छिड़का तथा उसे आग लगा दी । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान, बाल साक्षी ने राजू और यशपाल दोनों को दोषमुक्त करते हुए यह कथन किया है कि उन्होंने किसी प्रकार का कोई अपराध नहीं किया था । बाल साक्षी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि जब उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था तो उसने मजिस्ट्रेट को यह कहा था कि उसे वर्तमान मामले के संदर्भ में किसी प्रकार की कोई जानकारी नहीं है । इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य यह दर्शित करता है कि अभियोजन साक्षी बाघिशा अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् से अपनी माता के मायके वाले घर में निवास कर रही है और इसलिए उसकी माता के निकट नातेदारों द्‌वारा उसे सिखाए-पढ़ाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता ।

19. अभियोजन साक्षी बाघिशा के पूर्वोक्त प्रकृति के कथन को ध्यान में रखते हुए उसके कथन का अवलंब लेना अत्यंत असुरक्षित होगा और इसलिए एकमात्र उसके कथन के आधार पर प्रत्यर्थियों को सिद्धदोष नहीं ठहराया जा सकता । विद्‌वान् विचारण न्यायालय ने किसी बाल साक्षी की विश्वसनीयता से संबंधित विधि का उल्लेख करने के पश्चात् सही रूप से अभियोजन साक्षी बाघिशा के कथन का परित्याग किया था और इसलिए विद्‌वान् विचारण न्यायालय ने इस संबंध में अपनाई गई प्रक्रिया में किसी प्रकार की कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है ।

20. जहां तक मृतका के अन्य निकट नातेदारों के कथनों के रूप में अभिलेख पर विद्‌यमान अन्य साक्ष्य का संबंध है, स्वीकार्य रूप से वे अपराध के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं हैं, अतः, मृतका की मृत्यु के कारण के

संबंध में प्रस्तुत किए गए उनके कथन केवल अनुश्रुत प्रकृति के हैं और इसलिए वे साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं हैं । इस प्रकार न्यायालय के अभिलेख पर घटना से संबंधित एकमात्र उपलब्ध साक्ष्य अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत किया गया है । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, अभियोजन साक्षी बाघिशा द्वारा प्रस्तुत परिसाक्ष्य विरोधाभासों और विसंगतियों से परिपूर्ण है और साथ ही यह भी संभावना विद्यमान है कि उसे सिखाया-पढ़ाया गया हो । अत:, उसके कथन का अवलंब लेना अत्यंत असुरक्षित और परिसंकटमय है ।

21. जहां तक दहेज की मांग के संबंध में मृतका के अन्य नातेदारों द्वारा प्रस्तुत किए गए कथनों का संबंध है, उक्त कथन तारीखों, दहेज के रूप में मांगी वस्तुओं तथा अन्य विशिष्टियों के बारे में विनिर्दिष्ट नहीं हैं । अत:, विचारण न्यायालय ने सही रूप से उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विश्वास करने से इनकार कर दिया क्योंकि उक्त साक्ष्य अविश्वसनीय और डांवा-डोल प्रकृति के प्रतीत होते हैं ।

22. साक्ष्य का एक अन्य सेट मृतका के अप्राप्तवय पुत्र, अभियोजन साक्षी अशोक कुमार, जो किराएदार था और घटना के समय घटनास्थल को सम्मिलित करने वाले घर में निवास कर रहा था तथा पड़ोसी अभियोजन साक्षी रमेश चन्द्र द्वारा प्रस्तुत कथनों के रूप में विद्यमान हैं । इन साक्षियों के अनुसार, मृतका और प्रत्यर्थी सं. 1 के बीच विद्यमान संबंध मधुर प्रकृति के थे और अभियोजन साक्षी परिमोक्ष, मृतका के अप्राप्तवय पुत्र के अनुसार उसकी माता की मृत्यु गैस के रिसाव के कारण हुई है । स्वतंत्र अभियोजन साक्षियों, अर्थात् अशोक कुमार और रमेश चन्द्र ने मृतका के नातेदारों द्वारा उनके कथनों में लगाए गए दहेज की मांग संबंधी आरोपों तथा प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा क्रूरता बरतने के आरोपों का समर्थन नहीं किया है ।

23. पूर्वोक्त प्रकृति के अभिसाक्ष्य को विचार में लेने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय के पास प्रत्यर्थियों को दोषमुक्त करने के अलावा अन्य कोई विकल्प उपलब्ध नहीं था । वर्तमान मामला कोई ऐसा मामला नहीं है जहां विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सारवान् साक्ष्य

की अनदेखी की गई है और न ही यह कोई ऐसा मामला है जहां विद्वान् विचारण न्यायालय ने ऐसे किसी साक्ष्य को प्रस्तुत करने की अनुमति न दी हो, जिसे अभियोजन पक्ष प्रस्तुत करने की वांछा रखता था । वस्तुतः, अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को पूरा करने में आठ वर्ष का समय लिया है । अतः, यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किए । अतः, वर्तमान मामला ऐसा आपवादिक प्रकृति का मामला प्रतीत नहीं होता है जहां उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करे ।

24. पूर्वगामी कारणों से वर्तमान याचिका कायम रखे जाने योग्य प्रतीत नहीं होती क्योंकि उच्च न्यायालय को वर्तमान मामला आपवादिक प्रकृति का ऐसा मामला प्रतीत नहीं होता है, जिसमें उसे अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप करना समुचित प्रतीत हो । तद्नुसार, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को खारिज किया जाता है ।

इस आदेश की एक प्रति विचारण न्यायालय के मूल अभिलेख के साथ वापस भेज दी जाए ।

याचिका खारिज की गई ।

पु.

आर. के. गोसाईं

बनाम

राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार और अन्य

[2019 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 4936]

तारीख 19 मई, 2021

न्यायमूर्ति विपिन सांघी और न्यायमूर्ति जसमीत सिंह

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 और धारा 436क – कतिपय उपरोक्त जनहित याचिकाओं के माध्यम से यह प्रश्न उठाया जाना कि कोविड-19 महामारी के दौरान अनेकों अस्पतालों को 100% कोविड प्रसुविधा वाले अस्पतालों में संपरिवर्तित किया गया है और इस कारणवश राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली में अवस्थित तीन कारागारों में ऐसे अन्य रोगियों, जो कोविड-19 से पीड़ित नहीं हैं, को समुचित उपचार उपलब्ध नहीं हो पा रहा है – इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न भी उठाया जाना कि कोविड-19 महामारी को ध्यान में रखते हुए सभी विचारणाधीन कैदियों के मामले को पुनर्विलोकन हेतु विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति के समक्ष विचारार्थ रखा जाए – माननीय उच्चतम न्यायालय ने विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् राज्य को यह निदेश जारी किए कि वह यह सुनिश्चित करे कि कोविड-19 से ग्रस्त रोगियों से भिन्न अन्य रोगियों को उस दशा में समुचित जांच/उपचार प्राप्त होता है, जहां उनके निर्देश अस्पताल को 100% कोविड प्रसुविधा वाले अस्पताल में संपरिवर्तित कर दिया गया है – ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा यह निदेश दिया गया कि इस प्रकार के रोगियों को ऐसे अन्य अस्पतालों के माध्यम से जांच/उपचार उपलब्ध कराया जाना चाहिए जो 100% कोविड प्रसुविधा वाले अस्पताल नहीं हैं – इसके अतिरिक्त, माननीय उच्च न्यायालय द्वारा इस स्थिति को भी स्पष्ट किया गया है कि ऐसे विचारणाधीन कैदियों, जिन पर ऐसे अपराध का आरोप लगाया गया है, जिनके लिए विधि के अधीन मृत्युदंड को एक दंड के रूप में विहित किया गया है, के मामलों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क

के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति के समक्ष नहीं रखा जा सकता और बहु अपराधों के आरोपों का सामना करने वाले विचारणाधीन कैदियों को, जिन्होंने निम्नतर अपराध के लिए विहित कारावास के दंडादेश से आधी अवधि के कारावास को पूरा कर लिया है, यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि उन्हें प्रतिभुओं सहित या रहित या व्यक्तिगत बंधपत्र पर जमानत दी जाए तथा निर्मुक्त किया जाए – उन्हें केवल यह अधिकार प्राप्त होता है कि उनके मामले के संबंध में विचारणाधीन कैदी के संबंध में पुनर्विलोकन समिति द्वारा विचार किया जाएगा और समुचित मूल्यांकन और विश्लेषण के पश्चात् यह निर्णय दिया जाएगा कि उन्हें जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए अथवा नहीं तथा विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति उक्त विचारणाधीन कैदियों को निर्मुक्त करने के लिए आबद्ध नहीं हैं ।

वर्तमान में मामले का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि देश में कोविड-19 महामारी को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली में स्थित तीन कारागारों में सिद्धदोष कैदियों और विचारणाधीन कैदियों की दयनीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए चार जनहित याचिकाएं फाइल की गईं, जिनकी विषयवस्तु एक समान है । उच्च न्यायालय ने इन चारों जनहित याचिकाओं पर एक साथ विचार किया । उक्त याचिकाओं में यह प्रार्थना की गई थी कि राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली के तीन कारागारों में बंद सिद्धदोष तथा विचारणाधीन कैदियों हेतु समुचित रूप से आरटी-पीसीआर/आरएटी परीक्षणों की व्यवस्था तथा कोविड-19 से संक्रमित रोगियों एवं अन्य रोगियों के लिए समुचित जांच/उपचार की भी व्यवस्था की जाए । इसके अतिरिक्त, यह भी प्रार्थना की गई है कि सभी विचारणाधीन कैदियों के मामलों को विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति के समक्ष रखा जाए और जहां तक संभव हो उन्हें शीघ्रातिशीघ्र जमानत पर निर्मुक्त करने का आदेश दिया जाए । उच्च न्यायालय ने विरोधी पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेलों की दलीलों तथा उक्त विषयवस्तु के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए दिशा-निर्देशों को विचार में लेने के पश्चात् आंशिक रूप से रिट याचिकाओं को आंशिक रूप से मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् काउंसेल द्वारा इस व्यथा को प्रस्तुत किया गया है कि गैर कोविड रोगियों की अनदेखी की जा रही है, किन्तु उक्त दलील सही प्रतीत नहीं होती है क्योंकि प्रत्येक कारागार में कारागार अस्पताल विद्यमान हैं जो ऐसे रोगियों का उपचार कर रहे हैं और जब कभी आवश्यकता होती है तो उन्हें बड़े निर्देश अस्पतालों में गैर कोविड-19 बीमारियों के उपचार हेतु ले जाया जाता है । जब कभी ऐसी कोई परिस्थिति न्यायालय के समक्ष जमानतों के संबंध में कार्यवाहियां करते समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं तो न्यायालय अभियुक्त की किसी गैर कोविड प्रसुविधा अस्पताल में चिकित्सीय परीक्षा/उपचार कराने के लिए उस दशा में आवश्यक निदेश पारित करते हैं, जहां निर्देश अस्पताल 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल है । किसी भी प्रकार से ऐसी स्थिति से बचा जाता है जहां अभियुक्त को कोई चिकित्सा सुविधा प्राप्त न हो और उसे ऐसी जांच/उपचार से वंचित रखा जाए, जो उसके लिए अपेक्षित है । उच्च न्यायालय विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत की गई इस दलील से सहमत है कि अभियुक्त को यह नहीं कहा जा सकता कि चूंकि निर्देश अस्पताल एक 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल है इसलिए उसका उपचार/जांच नहीं की जा सकती । इस सीमा तक हम राज्य को यह निदेश देते हैं कि वह यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक कैदी/अभियुक्त को, जिसे जांच/उपचार की आवश्यकता है, किसी ऐसे अन्य अस्पताल, जो 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल नहीं है और जो कैदी को जांच/उपचार उपलब्ध करा सकता है, में ले जाकर उस दशा में जांच/उपचार उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जहां निर्देश अस्पताल 100% कोविड प्रसुविधा है । यह उपयुक्त होगा कि यदि बहु अपराधों की दशा में निम्नतर अपराध के लिए विहित कारावास के दंडादेश से आधी अवधि पूरी करने के पश्चात् यूटीपी द्वारा किसी अभियुक्त के मामले का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए, उच्च न्यायालय के मतानुसार, माननीय उच्चतम न्यायालय का आशय यह नहीं था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क, जो स्पष्ट रूप से ऐसे मामलों को विचारार्थ लिए जाने को अपवर्जित करती है, जिसमें एक दंड के रूप में मृत्युदंड को विनिर्दिष्ट किया गया है, के उपबंधों को शिथिल या कमजोर किया जाए । इसका अर्थान्वयन केवल इस प्रकार किया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए

संप्रेक्षणों के संबंध में यह समझा जाए कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने केवल ऐसे मामलों के संबंध में संप्रेक्षण किया है जो मामलों के ऐसे प्रवर्ग के अंतर्गत आते हैं, जिन पर यूटीआरसी द्वारा विचार किया जा सकता है – जिसके कारण ऐसे सभी मामले अपवर्जित हो जाएंगे, जिनमें मृत्युदंड को विधि के अधीन एक दंड के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है, यूटीआरसी को विचारणाधीन कैदी द्वारा भोगी गई निम्नतर अपराध के लिए कारावास के दंडादेश से आधी अवधि को पूरा कर लेने के पश्चात् उसके मामले का पुनर्विलोकन करना चाहिए । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई है कि इस बात का मूल्यांकन और विशलेषण यूटीआरसी पर छोड़ देना चाहिए कि क्या ऐसा कोई अपराध, जिसके लिए दंड के रूप में मृत्युदंड को एक दंड के रूप में विहित किया गया है, कारित किया गया है अथवा नहीं । उच्च न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर किया । मामले की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन परीक्षा करते समय मामलों के गुणागुण का मूल्यांकन और विश्लेषण करने का उत्तरदायित्व यूटीआरसी का नहीं है । मामले के इन पहलुओं के संबंध में कार्यवाही करना न्यायालय का कार्य है । अतः, ऐसे सभी मामलों में, जिनमें ऐसा कोई अपराध अंतर्वलित है, जिसके लिए विधि के अधीन मृत्युदंड को दंडों में से एक के रूप में विहित किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन यूटीआरसी के समक्ष विचारार्थ नहीं रखा जा सकता और इसलिए समिति द्वारा ऐसे मामलों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 के अधीन पुनर्विलोकन करने का प्रश्न ही नहीं उठता । ऐसे मामलों के संबंध में भी यूटीआरसी विचारणाधीन कैदी को निर्मुक्त करने का निदेश दिए जाने संबंधी निर्णय केवल इसलिए लेने हेतु आबद्ध नहीं है कि विचारणाधीन कैदी ने निम्नतर या सबसे छोटे अपराध के लिए विनिर्दिष्ट कारावास के अधिकतम दंडादेश की अवधि में से आधी अवधि का कारावास पूरा कर लिया है । "यह आवश्यक या अनिवार्य नहीं है" शब्दों का प्रयोग यह दर्शित करता है कि किसी विचारणाधीन कैदी को उस पर आरोपित अपराध के लिए विहित अधिकतम दंडादेश की कम से कम आधी अवधि के लिए अभिरक्षा में रहना चाहिए और इससे यह भी दर्शित होता है कि यह आज्ञापक नहीं है कि विचारणाधीन कैदी द्वारा निम्नतर या सबसे छोटे

अपराध के लिए विहित अधिकतम कारावास के दंडादेश से आधी अवधि के कारावास को पूरा करने पर विचारणाधीन कैदी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन निर्मुक्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश के निबंधनानुसार, किसी विचाराणाधीन कैदी को केवल यह अधिकार प्राप्त होता है कि उसके मामले के संबंध में यूटीआरसी द्वारा विचार किया जाएगा और उक्त मामले में यूटीआरसी उस प्रक्रम पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन विचारणाधीन कैदी को निर्मुक्त करने का निदेश दे सकती है अथवा ऐसा कोई निदेश देने से इनकार कर सकती है । तदनुसार, उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निबंधनों के अनुसार इन याचिकाओं का निपटारा किया गया । (पैरा 4, 6, 11, 12, 13 और 14)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 4936.

वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से कुल चार रिट याचिकाओं का निपटारा किया गया । ये चारों रिट याचिकाएं लोक हित में फाइल की गई थीं और वे लगभग समान विषयवस्तु से संबंधित थीं । अतः, उच्च न्यायालय द्वारा इन चारों लोक हित रिट याचिकाओं की एक साथ सुनवाई की गई ।

याची की ओर से	सर्वश्री अनुभव तनेजा, अधिवक्ता के साथ वरिष्ठ अधिवक्ता मोहित माथुर
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री आदित्य पी. खन्ना, शशांक तिवारी के साथ संतोष कुमार त्रिपाठी, स्थायी काउंसेल, संजय लाव, स्थायी काउंसेल (दां.), करणजीत शर्मा और कंवलजीत अरोड़ा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति श्री विपिन सांघी ने दिया ।

न्या. सांघी – वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से कुल चार रिट याचिकाओं का निपटारा किया गया । ये चारों रिट याचिकाएं लोक हित में फाइल की गई थी और वे लगभग समान विषयवस्तु से संबंधित थी ।

अतः, उच्च न्यायालय द्वारा इन चारों लोक हित रिट याचिकाओं का एक सामान्य आदेश के माध्यम से निपटारा करने का प्रस्ताव किया गया । इन रिट याचिकाओं में न्यायालय के समक्ष किए गए संबंधित अनुरोध निम्नानुसार हैं :-

रिट याचिका (सिविल) सं. 4936/2021 में की गई प्रार्थना

"i. परमादेश की प्रकृति की कोई रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा कारागार महानिदेशक को यह निदेश दिया जाए कि वह माननीय उच्च न्यायालय को दिल्ली के तीनों कारागारों में आज की तारीख को विद्यमान कोविड-19 से संक्रमित व्यक्तियों के मामलों की सही संख्या के संबंध में अवगत कराते हुए ब्यौरेवार शपथपत्र फाइल करे ;

ii. देश की राजधानी के तीनों कारागारों में, कोविड-19 की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए बंदियों को अंतरिम जमानत या विशेष पैरोल पर निर्मुक्त करने हेतु दिशा-निर्देश करने के लिए परमादेश की प्रकृति की कोई रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए ;

iii. परमादेश की प्रकृति की कोई रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार को इस प्रभाव का शपथपत्र फाइल करने का निदेश दिया जाए कि सभी सरकारी और प्राइवेट मान्यताप्राप्त प्रयोगशालाओं में पर्याप्त आरटी-पीसीआर परीक्षण करने के लिए परीक्षण संबंधी अवसंरचना उपलब्ध है और किसी भी नागरिक को आरटी-पीसीआर परीक्षण करने से इनकार नहीं किया जा रहा ;

iv. परमादेश की प्रकृति की कोई रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार को यह निदेश दिया जाए कि वह ऐसे रोगियों को, जिन्होंने आरटी-पीसीआर परीक्षण कराया है, तुरंत वाहट्सऐप और हार्ड प्रतियों के माध्यम से उनके परीक्षण के परिणामों को उपलब्ध कराया जाए और ऐसा 24 घंटे के भीतर किया जाए और इस संबंध में आइसीएमआर की वेबसाइट पर उन्हें अपलोड किए जाने की प्रतीक्षा न की जाए ;

v. ऐसी कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए जिसे यह माननीय उच्च न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायोचित तथा उचित समझता है ।”

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

रिट याचिका (सिविल) सं. 5153/2021 में की गई प्रार्थना

“(क) प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को उपयुक्त रिट, आदेश और/या निदेश जारी किए जाएं कि वे दिल्ली के कारागारों में बंद कैदियों/बंदियों का आज्ञापक रूप से आरटी-पीसीआर परीक्षण कराएं ;

(ख) प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को यह निदेश दिया जाए कि वे एक गैर-कोविड चिकित्सीय प्रसुविधा को स्थापित करें, जिसमें सभी प्रकार के आवश्यक चिकित्सा उपस्कर और चिकित्सा कर्मचारीवृन्द उपलब्ध हों और जो गैर-कोविड कारागार में बंद रोगियों का उपचार करें ;

(ग) वर्तमान याचिका में दी गई दलीलों के आलोक में दिल्ली के कारागारों में कैदियों की संख्या को कम करने हेतु उपयुक्त निदेश जारी किए जाएं ;

(घ) ऐसी कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निदेश जारी अथवा पारित किया जाए जिसे यह माननीय उच्च न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायोचित तथा उचित समझता है ।”

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

रिट याचिका (सिविल) सं. 5033/2021 में की गई प्रार्थना

“क. तिहाड़ जेल, मंडोली जेल और रोहिणी जेल में अधिकतम सात वर्षों के कारावास और जुर्माने से दंडनीय अपराधों (अर्थात् अजघन्य अपराधों) के सभी विचारणाधीन कैदियों और सिद्धदोष कैदियों को अंतरिम जमानत/पैरोल पर तुरंत निर्मुक्त किया जाए ;

ख. पुलिस को यह निदेश दिया जाए कि वह न्यायालय के

आदेश के बिना ऐसे अभियुक्त व्यक्तियों को गिरफ्तार न करे, जो हिंसक अपराधों में सम्मिलित नहीं हैं ;

ग. तिहाड जेल, मंडोली जेल और रोहिणी जेल में, जघन्य अपराधों के सिद्धदोष कैदियों जिन्हें सात वर्ष से अधिक के कारावास से दंडादिष्ट किया गया है, बंद ऐसे कैदियों, जिन्हें पूर्व में निर्मुक्त किया गया था और ऐसे कैदियों को जिन्होंने स्वयं आत्मसमर्पण किया था (विचारणाधीन और साथ ही सिद्धदोष कैदियों) को अस्थायी रूप से निर्मुक्त किया जाए ;

घ. ऐसे कैदियों को निर्मुक्त किया जाए जो तिहाड जेल, मंडोली जेल और रोहिणी जेल में किसी बीमारी से ग्रस्त हैं ;

ङ कैदियों को पृथक् करने और उनके परीक्षण तथा उपचार करने के लिए समुचित प्रसुविधाएं और व्यवस्था उपलब्ध कराई जाए ;

च. गंभीर चिकित्सा स्थिति वाले कैदियों को अंतरिम रूप से निर्मुक्त करने का निदेश जारी किया जाए ;

छ. ऐसा (ऐसे) कोई अन्य आदेश पारित किया जाए (किए जाएं), जिन्हें यह न्यायालय न्याय के हित में तथा दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र की साधारण जनता के हित में उपयुक्त और उचित समझता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

रिट याचिका (दांडिक) सं. 7/2021 में की गई प्रार्थना

"(क) परमादेश की प्रकृति की कोई उपयुक्त रिट, आदेश और/या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार को यह निदेश दिया जाए कि वह ऐसे विचारणाधीन कैदियों को निर्मुक्त करे, जो विचारण का सामना कर रहे हैं और जिन्होंने निम्नतर अपराधों में विहित अधिकतम दंडादेश की आधे से अधिक अवधि को पूरा कर लिया हो ;

(ख) परमादेश की प्रकृति की कोई उपयुक्त रिट, आदेश

और/या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति और कारागार अधीक्षक को यह निदेश दिया जाए कि वे इस तथ्य का सत्यापन करें कि बहु आरोपों के अधीन विचारण का सामना करने वाले विचारणाधीन ऐसे कैदियों, जिन्होंने निम्नतर आरोप में विहित दंडादेश की अवधि को पूरा कर लिया है, को कैदियों के उस प्रवर्ग के अधीन रखा जाता है जिन्हें जमानत पर निर्मुक्त किया जाना है ;

(ग) परमादेश की प्रकृति की कोई उपयुक्त रिट, आदेश और/या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति और कारागार अधीक्षक को यह निदेश दिया जाए कि वे साप्ताहिक आधार पर ऐसे विचारणाधीन कैदियों, जिन्होंने निम्नतर आरोप में विहित दंडादेश की अवधि को पूरा कर लिया है और जिन्हें ऐसे कैदियों के प्रवर्ग में रखा जाना है, जिनके संबंध में उस समय से, जब वे इस प्रवर्ग के लिए पात्र हो जाते हैं, एक सप्ताह की अवधि के भीतर जमानत पर निर्मुक्त करने के संबंध में विचार किया जा सकता है, की वर्तमान प्रास्थिति को उपलब्ध कराएं ;

(घ) परमादेश की प्रकृति की कोई उपयुक्त रिट, आदेश और/या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा डीएलएसए को यह निदेश दिया जाए कि वे अपनी वेबसाइट पर निम्नतर आरोप में विचारण का सामना करने वाले विचारणाधीन कैदियों से संबंधित सांख्यिकी जानकारी उपलब्ध कराएं और जहां डीएलएसए के माध्यम से जमानत हेतु आवेदन किया गया है वहां उसकी निपटान दर को भी उपलब्ध कराए ;

(ङ) परमादेश की प्रकृति की कोई उपयुक्त रिट, आदेश और/या निदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा यह निदेश दिया जाए कि ऐसे विचारणाधीन कैदियों को निर्मुक्त किया जाए जिन्होंने किसी मजिस्ट्रेट द्वारा संचालित किए जा रहे किसी विचारण में तीन वर्ष या अधिक की अवधि की अभिरक्षा को पूरा कर लिया है ;

(च) ऐसे विचारणाधीन कैदियों, जिन्होंने बहु आरोपों में

<u>निम्नतर दंडादेश की आधी अवधि को पूरा कर लिया है, को धारा 436क के अधीन फायदा प्राप्त करने की अनुज्ञा प्रदान की जाए और साथ ही उन्हें यह अनुमति दी जाए कि वे सीधे संबद्ध न्यायालयों से जमानत हेतु संपर्क करें</u> ;

(छ) ऐसा (ऐसे) कोई अन्य आदेश पारित किया जाए (किए जाएं), जिन्हें यह न्यायालय न्याय के हित में उपयुक्त और उचित समझता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

2. हमनें इन चारों याचिकाओं में ईप्सित सारवान् अनुतोष को प्रमुखता से उपदर्शित किया है और जिस अंतर्वस्तु को प्रमुख रूप से उपदर्शित नहीं किया गया है वह मुख्यत: प्रमुख रूप से दर्शित अनुतोषों की प्राप्ति के लिए है ।

3. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि व्यावहारिक रूप से प्रथम तीन याचिकाओं, अर्थात् रिट याचिका (सिविल) सं. 4936/2021, 5153/2021 और 5033/2021 में सारवान् प्रार्थनाएं कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । जिस सीमा तक उन्हें विचार में लिया जा सकता है, उस सीमा तक उनके संबंध में हमारे द्वारा कार्यवाही की गई है । कैदियों की रैपिड एंटीजन टेस्ट (आरएटी) और साथ ही आरटी-पीसीआर परीक्षण के माध्यम से कोविड-19 के लिए जांच की जा रही है । जहां तक कैदियों को निर्मुक्त किए जाने के लिए ईप्सित अनुतोषों का संबंद्ध है – विचारणाधीन कैदियों और सिद्धदोष कैदियों के संबंध में ईप्सित प्रार्थना को सारवान् रूप से, उच्च शक्ति पुनिर्वलोकन समिति (एचपीसी) द्वारा तारीख 4 मई, 2021 को और 11 मई, 2021 को हुई उसकी बैठकों में लिए गए निर्णयों तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 7 मई, 2021 को दिए गए निर्णय के आलोक में, पूरा कर दिया गया है । इन याचिकाओं में एचपीसी की सिफारिशों को चुनौती दिए जाने संबंधी कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

4. श्री सिंघल द्वारा इस व्यथा को प्रस्तुत किया गया है कि गैर कोविड रोगियों की अनदेखी की जा रही है, किन्तु उक्त दलील सही प्रतीत नहीं होती है क्योंकि प्रत्येक कारागार में कारागार अस्पताल

विद्यमान हैं जो ऐसे रोगियों का उपचार कर रहे हैं और जब कभी आवश्यकता होती है तो उन्हें बड़े निर्देश अस्पतालों में गैर कोविड-19 बीमारियों के उपचार हेतु ले जाया जाता है ।

5. श्री सिंघल ने हमारा ध्यान एक विशिष्ट मामले की ओर आकर्षित किया है, जिसमें दांडिक मामला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 811/2016, पुलिस थाना न्यू उस्मानपुर, दिल्ली में विद्यमान विचारण न्यायालय को राज्य द्वारा प्रस्तुत प्रास्थिति रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई थी कि फेफड़ों संबंधी कार्यकरण परीक्षण (पीएफटी) जिसे एक विशिष्ट अभियुक्त के लिए कराया जाना अपेक्षित था, को कारागार में नहीं कराया जा सकता था क्योंकि उक्त परीक्षण सीजे-10 रुग्णालय में उपलब्ध नहीं था और डा. बाबासाहेब अम्बेडकर अस्पताल को लोक नायक अस्पताल तथा दीन दयाल उपाध्याय अस्पताल के साथ 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल में संपरिवर्तित कर दिया गया है । इसलिए, अभियुक्त का पीएफ परीक्षण वर्तमान में नहीं कराया जा सका था । उन्होंने यह दलील दी है कि ऐसे सभी मामलों में राज्य को किसी अन्य अस्पताल में अपेक्षित परीक्षा कराए जाने का उत्तरदायित्व स्वीकार करना चाहिए, जो पूर्णतया कोविड-19 समर्पित प्रसुविधा अस्पताल नहीं है । उक्त मामले में प्रभारी चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में यह भी कथन किया गया है कि "वर्तमान में कैदी की चिकित्सीय स्थिति स्थिर और समाधानप्रद है" और यह भी कथन किया गया है कि कारागार, रुगणालय द्वारा विहित दवाइयां उपलब्ध कराई जा रही हैं । हमारे द्वारा पूछताछ किए जाने पर श्री सिंघल ने यह कथन किया है कि उक्त कैदी को विचारण न्यायालय द्वारा अंतरिम जमानत मंजूर की गई थी । श्री सिंघल द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई है कि प्रत्येक मामले में कारागार में बंद कैदियों के लिए न्यायालय तक पहुंच बनाना संभव नहीं हो सकता और ऐसे सभी मामलों में, जहां निर्देश अस्पताल 100% कोविड प्रसुविधा है, वहां कारागार प्राधिकारियों को सुसंगत परीक्षण/जांच और उपचार किसी ऐसे अन्य अस्पताल में कराना चाहिए, जो 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल न हो ।

6. हम यह संप्रेक्षण कर सकते हैं कि जब कभी ऐसी कोई परिस्थिति न्यायालय के समक्ष जमानतों के संबंध में कार्यवाहियां करते समक्ष प्रस्तुत की जाती है तो न्यायालय अभियुक्त की किसी गैर कोविड

प्रसुविधा अस्पताल में चिकित्सीय परीक्षा/उपचार कराने के लिए उस दशा में आवश्यक निदेश पारित करते हैं, जहां निर्देश अस्पताल 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल है । किसी भी प्रकार से ऐसी स्थिति से बचा जाता है जहां अभियुक्त को कोई चिकित्सा सुविधा प्राप्त न हो और उसे ऐसी जांच/उपचार से वंचित रखा जाए, जो उसके लिए अपेक्षित है । हम श्री सिंघल द्वारा प्रस्तुत की गई इस दलील से सहमत हैं कि अभियुक्त को यह नहीं कहा जा सकता कि चूंकि निर्देश अस्पताल एक 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल है इसलिए उसका उपचार/जांच नहीं की जा सकती । इस सीमा तक हम राज्य को यह निदेश देते हैं कि वह यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक कैदी/अभियुक्त को, जिसे जांच/उपचार की आवश्यकता है, किसी ऐसे अन्य अस्पताल, जो 100% कोविड प्रसुविधा अस्पताल नहीं है और जो कैदी को जांच/उपचार उपलब्ध करा सकता है, में ले जाकर उस दशा में जांच/उपचार उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जहां निर्देश अस्पताल 100% कोविड प्रसुविधा है ।

7. श्री माथुर, विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल, जो रिट याचिका (दांडिक) सं. 7/2021 वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए हैं, ने यह व्यथा अभिव्यक्त की है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 436क के अधीन निर्मुक्ति के लिए विचार किए जाने हेतु हकदार मामलों पर विचार नहीं किया जा रहा है । श्री माथुर ने यह दलील प्रस्तुत की है कि विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति (यूटीआरसी), जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन आने वाले मामलों के संबंध में विचार करने के लिए गठित किया गया है, कोई बैठक नहीं कर रही है और न ही उसने मामलों के पुनर्विलोकन की प्रक्रिया की है ।

8. श्री कंवल जीत अरोड़ा, सचिव, दिल्ली राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण ने भी न्यायालय की कार्यवाहियों में भाग लिया और उन्होंने यह कथन किया है कि उक्त समिति साप्ताहिक आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन आने वाले मामलों के संबंध में विचार कर रही है । उन्होंने यह कथन किया है कि उन्होंने पहले ही इस प्रयोजन के लिए अपने तारीख 13 मई, 2021 के पत्र द्वारा अपेक्षित निदेश जारी कर दिए हैं । इसके अतिरिक्त, उन्होंने न्यायालय को यह भी सूचित किया कि राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण ने सभी जिला

स्तरीय समितियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन आने वाले मामलों के लिए नियमित रूप से बैठकों का आयोजित करने हेतु संवेदनशील बनाने के लिए वेबीनारों की श्रृंखला की समय-सूची तैयार की है ।

9. श्री माथुर ने माननीय उच्चतम न्यायालय के तारीख 24 अप्रैल, 2015 के 1382 कारागारों में विद्यमान अमानवीय स्थितियों के मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है । उक्त निर्णय के पैरा 4 में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों का अवलंब लेते हुए श्री माथुर ने यह दलील प्रस्तुत की है कि सभी मामलों, जिनके अंतर्गत विधि के अधीन ऐसे अपराध के मामले भी हैं, जिनके लिए मृत्युदंड को दंडों में से एक के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है, को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन विचार किए जाने हेतु यूटीआरसी के समक्ष रखा जाना चाहिए और जहां कहीं किसी अभियुक्त के विरुद्ध एक से अधिक अपराधों का अभिकथन किया गया है, वहां निम्नतर अपराध के लिए विहित दंड को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क को लागू करने के लिए निर्णय का आधार बनाया जाना चाहिए । उक्त निर्णय का पैरा 4 निम्नानुसार है :-

> "4. तारीख 30 जून, 2015 को या उसके आस-पास आयोजित की जाने वाली बैठक में विचारणाधीन कैदी पुनर्विलोकन समिति को सभी विचारणाधीन कैदियों, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के फायदे के लिए हकदार हैं, के सभी मामलों पर विचार करना चाहिए । गृह मंत्रालय द्वारा यह इंगित किया गया है कि बहु अपराधों, जिनके लिए भिन्न-भिन्न अवधि के कारावास को विहित किया गया है, की दशा में किसी कैदी को उस समय निर्मुक्त किया जाना चाहिए, यदि उसने बृहत्तर दंडादेश के अपराध के लिए कारावास की अवधि से आधे अवधि का कारावास पूरा कर लिया है । हमारी राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन यह एक अपेक्षा हो सकती है, किन्तु यह अधिक उपयुक्त होगा यदि बहु अपराधों की दशा में निम्नतर अपराध के लिए विचारणाधीन कैदी द्वारा आधे दंडादेश की अवधि को पूरा करने के पश्चात् उसके मामले का पुनर्विलोकन किया जाए । यह आवश्यक या अनिवार्य नहीं है कि कोई विचारणाधीन कैदी केवल इसलिए अधिकतम

<u>दंडादेश की अवधि की कम से कम आधी अवधि के लिए अभिरक्षा में रहे क्योंकि उसका विचारण समय पर पूरा नहीं किया गया है</u> ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

10. इस प्रक्रम पर हमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क का परिशीलन करना चाहिए, जो निम्नानुसार है :–

"436क. अधिकतम अवधि, जिसके लिए विचाराधीन कैदी को निरुद्ध किया जा सकता है – जहां कोई व्यक्ति, किसी विधि के अधीन किसी अपराध के (<u>जो ऐसा अपराध नहीं है जिसके लिए उसे विधि के अधीन मृत्युदंड एक दंड के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है</u>) इस संहिता के अधीन अन्वेषण, जांच या विचारण की अवधि के दौरान कारावास की उस अधिकतम अवधि के, जो उस विधि के अधीन उस अपराध के लिए विनिर्दिष्ट की गई है, आधे से अधिक अवधि के लिए निरोध भोग चुका है, वहां वह प्रतिभुओं सहित या रहित व्यक्तिगत बंधपत्र पर न्यायालय द्वारा छोड़ दिया जाएगा :

परंतु न्यायालय, लोक अभियोजक की सुनवाई के पश्चात् और उन कारणों से जो उस द्वारा लेखबद्ध किए जाएंगे, ऐसे व्यक्ति के उक्त आधी अवधि से दीर्घतर अवधि के लिए निरोध को जारी रखने का आदेश कर सकेगा या व्यक्तिगत बंधपत्र के बजाय प्रतिभुओं सहित या रहित जमानत पर उसे छोड़ देगा :

परंतु यह और कि कोई भी ऐसा व्यक्ति अन्वेषण, जांच या विचारण की अवधि के दौरान उस विधि के अधीन उक्त अपराध के लिए उपबंधित कारावास की अवधि से अधिक के लिए किसी भी दशा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा ।

स्पष्टीकरण – जमानत मंजूर करने के लिए इस धारा के अधीन निरोध की अवधि की गणना करने में अभियुक्त द्वारा कार्यवाहियों में किए गए विलंब के कारण भोगी गई निरोध की अवधि को अपवर्जित किया जाएगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

11. हमारे मतानुसार, श्री माथुर द्वारा प्रस्तुत की गई दलील सटीक नहीं है और उसे माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का दोषपूर्ण निर्वचन करते हुए उस पर आधारित किया गया है । यह संप्रेक्षण करते हुए कि यह उपयुक्त होगा कि यदि बहु अपराधों की दशा में निम्नतर अपराध के लिए विहित कारावास के दंडादेश से आधी अवधि पूरी करने के पश्चात् यूटीपी द्वारा किसी अभियुक्त के मामले का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए, हमारे मतानुसार, माननीय उच्चतम न्यायालय का आशय यह नहीं था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क, जो स्पष्ट रूप से ऐसे मामलों को विचारार्थ लिए जाने को अपवर्जित करती है, जिसमें एक दंड के रूप में मृत्युदंड को विनिर्दिष्ट किया गया है, के उपबंधों को शिथिल या कमजोर किया जाए । इसका अर्थान्वयन केवल इस प्रकार किया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के संबंध में यह समझा जाए कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने केवल ऐसे मामलों के संबंध में संप्रेक्षण किया है जो मामलों के ऐसे प्रवर्ग के अंतर्गत आते हैं, जिन पर यूटीआरसी द्वारा विचार किया जा सकता है – जिसके कारण ऐसे सभी मामले अपवर्जित हो जाएंगे, जिनमें मृत्युदंड को विधि के अधीन एक दंड के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया है, यूटीआरसी को विचारणाधीन कैदी द्वारा भोगी गई निम्नतर अपराध के लिए कारावास के दंडादेश से आधी अवधि को पूरा कर लेने के पश्चात् उसके मामले का पुनर्विलोकन करना चाहिए ।

12. श्री माथुर द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई है कि इस बात का मूल्यांकन और विशलेषण यूटीआरसी पर छोड़ देना चाहिए कि क्या ऐसा कोई अपराध, जिसके लिए दंड के रूप में मृत्युदंड को एक दंड के रूप में विहित किया गया है, कारित किया गया है अथवा नहीं । हम इस दलील को नामंजूर करते हैं । मामले की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन परीक्षा करते समय मामलों के गुणागुण का मूल्यांकन और विश्लेषण करने का उत्तरदायित्व यूटीआरसी का नहीं है । मामले के इन पहलुओं के संबंध में कार्यवाही करना न्यायालय का कार्य है । अतः, ऐसे सभी मामलों में, जिनमें ऐसा कोई अपराध अंतर्वलित है, जिसके लिए विधि के अधीन मृत्युदंड को दंडों में से एक के रूप में विहित किया गया

है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन यूटीआरसी के समक्ष विचारार्थ नहीं रखा जा सकता और इसलिए समिति द्वारा ऐसे मामलों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 के अधीन पुनर्विलोकन करने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

13. ऐसे मामलों के संबंध में भी यूटीआरसी विचारणाधीन कैदी को निर्मुक्त करने का निदेश दिए जाने संबंधी निर्णय केवल इसलिए लेने हेतु आबद्ध नहीं है कि विचारणाधीन कैदी ने निम्नतर या सबसे छोटे अपराध के लिए विनिर्दिष्ट कारावास के अधिकतम दंडादेश की अवधि में से आधी अवधि का कारावास पूरा कर लिया है । "यह आवश्यक या अनिवार्य नहीं है" शब्दों का प्रयोग यह दर्शित करता है कि किसी विचारणाधीन कैदी को उस पर आरोपित अपराध के लिए विहित अधिकतम दंडादेश की कम से कम आधी अवधि के लिए अभिरक्षा में रहना चाहिए और इससे यह भी दर्शित होता है कि यह आज्ञापक नहीं है कि विचारणाधीन कैदी द्वारा निम्नतर या सबसे छोटे अपराध के लिए विहित अधिकतम कारावास के दंडादेश से आधी अवधि के कारावास को पूरा करने पर विचारणाधीन कैदी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन निर्मुक्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश के निबंधनानुसार, किसी विचारणाधीन कैदी को केवल यह अधिकार प्राप्त होता है कि उसके मामले के संबंध में यूटीआरसी द्वारा विचार किया जाएगा और उक्त मामले में यूटीआरसी उस प्रक्रम पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436क के अधीन विचारणाधीन कैदी को निर्मुक्त करने का निदेश दे सकती है अथवा ऐसा कोई निदेश देने से इनकार कर सकती है ।

14. तद्नुसार, हम उपरोक्त निबंधनों के अनुसार इन याचिकाओं का निपटारा करते हैं ।

तद्नुसार, आदेश किया गया ।

पु.

राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य-क्षेत्र, दिल्ली सरकार)

बनाम

योगेश कोचर उर्फ बबलू

(2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 12)

तारीख 1 जून, 2021

न्यायमूर्ति सुब्रामोणियम प्रसाद

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 397 – सेशन न्यायालय द्वारा वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी का विचारण करने के पश्चात् उसे दोषमुक्त करने का आदेश देना – राज्य द्वारा उक्त दोषमुक्ति के निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका फाइल किया जाना – उक्त पुनरीक्षण याचिका में इस प्रभाव का कोई प्रकथन न किया जाना कि वर्तमान पुनरीक्षण याचिका लोक अभियोजक द्वारा राज्य सरकार के निदेश पर फाइल की गई है – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार उसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर अवस्थित किसी निचले दांडिक न्यायालय के समक्ष किन्हीं कार्यवाहियों के अभिलेख को, अपने किसी निष्कर्ष के सही होने, विधिपूर्ण होने या उसके औचित्य के संबंध में समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकेगा और उसकी परीक्षा कर सकेगा – इसके अतिरिक्त, वह किसी दंडादेश या आदेश, चाहे उसे लेखबद्ध किया गया हो या पारित कर दिया गया हो और ऐसे निचले न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के संबंध में प्रश्न कर सकेगा और ऐसे किसी अभिलेख को मंगाए जाने के समय यह निदेश दे सकेगा कि किसी दंडादेश या आदेश के निष्पादन को निलंबित किया जाए और अभिलेख की परीक्षा के लंबित रहने के दौरान यदि अभियुक्त कारावास में है तो उसे जमानत पर या उसके स्वयं के बंधपत्र पर निर्मुक्त करने का निदेश दे सकेगा – उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार किसी मामले में निचले न्यायालय के अभिलेखों की जांच कर सकता है किन्तु विधिक रूप से यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि ऐसा हस्तक्षेप यदा-कदा ही किया

जाना चाहिए – वर्तमान मामले में यह प्रतीत नहीं होता है कि सेशन न्यायालय द्वारा पारित निर्णय इतना त्रुटिपूर्ण है कि उसमें उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित हो, अतः, पुनरीक्षण याचिका खारिज की गई ।

वर्तमान मामले का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 28 नवम्बर, 2006 को सायं लगभग 7.15 बजे वर्तमान मामले के अभियुक्त/प्रत्यर्थी ने शिकायतकर्ता, अर्थात् संदीप दत्ता की पिटाई की और उसे घोर उपहति कारित की और साथ ही उसने उसकी मारुति कार जिसका पंजीकरण संख्या एच आर 26 एच 433 है, को भी नुकसान पहुंचाया । यह कथन किया गया है कि यह घटना पश्चिम विहार स्थित मकान सं. बीजी-6/344 के समीप घटित हुई थी । शिकायत के आधार पर पुलिस थाना पश्चिम विहार में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की सं. 73/2007, तारीख 24 जनवरी, 2007 के रूप में चिह्नित है और जिसके माध्यम से अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप् में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 325 और धारा 427 के अधीन अपराध करने के आरोप लगाए गए । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । सक्षम न्यायालय ने अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 325/427 के अधीन आरोप विरचित किए, जिसके संबंध में अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी ने अपने दोषी न होने का अभिवाक् किया और साथ ही विचारण का दावा किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए चार साक्षियों की परीक्षा की । विद्वान् विचारण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आहत साक्षी, अर्थात् अभि. सा. 1 विश्वसनीय प्रतीत होता है और इसलिए विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य के आधार पर अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दंड संहिता की धारा 325 के अधीन अपराध करने के लिए दोषसिद्ध ठहराया । अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी ने उक्त आदेश के विरुद्ध सेशन न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की थी । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र

लोक साक्षियों को अन्वेषण में सम्मिलित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है । यह पाया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अधीन किसी भी साधारण व्यक्ति को किसी सूचना की तामील नहीं की गई थी । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अधीन सूचना प्राप्त करने के पश्चात् लोक साक्षियों ने अन्वेषण में शामिल होने से इनकार कर दिया था और अन्वेषण अधिकारी ने ऐसे लोक साक्षियों के नामों और उनके पतों का कोई उल्लेख नहीं किया है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब अन्वेषण अधिकारी द्वारा साक्षियों से संपर्क करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है, यद्यपि सुसंगत समय और स्थान पर अनेक ऐसे साक्षी उपस्थित थे, और अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र साक्षियों को न बुलाने के लिए किसी प्रकार का कोई समाधानप्रद स्पष्टीकरण भी उपलब्ध नहीं कराया गया है तो ऐसे में अभियोजन के पक्षकथन के संबंध में गंभीर संदेह उत्पन्न होते हैं । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे कि घटना की तारीख 28 नवम्बर, 2006 और इस मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 24 जनवरी, 2007 को दर्ज कराई गई है, अर्थात् घटना की तारीख से लगभग 2 मास पश्चात् । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यद्यपि एमएलसी अभिलेख यह दर्शित करता है कि शिकायतकर्ता को घोर उपहतियां कारित हुई थीं, फिर भी यह कथन नहीं किया गया है कि शिकायतकर्ता अपना कथन प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं था । अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में कोई कारण नहीं बताया गया है कि अन्वेषण अधिकारी ने उसी तारीख को आहत/शिकायतकर्ता के कथन को लेखबद्ध क्यों नहीं किया था । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा यह उल्लेख भी किया गया है कि अपराध में प्रयुक्त हथियार को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया । उन्होंने इस तथ्य का भी उल्लेख किया है कि स्थल-नक्शा शिकायतकर्ता की निशानदेही पर तैयार किया गया था किन्तु स्थल-नक्शे पर शिकायतकर्ता के हस्ताक्षरों को अंकित नहीं किया गया है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे कि आहत/शिकायतकर्ता

की, एमएलसी को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा नहीं की गई और साथ ही आहत/शिकायतकर्ता को कारित हुई क्षतियों के संबंध में भी उसकी परीक्षा नहीं की गई है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने अपील को मंजूर करते हुए अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दोषमुक्त कर दिया । सेशन न्यायालय के उक्त निर्णय से व्यथित होकर राज्य द्वारा उक्त निर्णय के विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण याचिका फाइल की गई है । उच्च न्यायालय में दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने और दंड प्रक्रिया संहिता के विभिन्न उपबंधों पर गहन विचार करने के पश्चात् पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(4) यह आज्ञापक बनाती है कि यदि दंड प्रक्रिया संहिता में किसी अपील के लिए उपबंध किया गया है और ऐसी कोई अपील दाखिल नहीं की जाती है तो ऐसी स्थिति में ऐसे पक्षकारों द्वारा, जो अपील फाइल कर सकते थे, पुनरीक्षण संबंधी कोई कार्यवाहियां नहीं लाई जा सकती । अतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 और धारा 400 के अधीन स्कीम यह अनुबंधित करती है कि जब किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने का अधिकार विद्यमान है तो ऐसी स्थिति में पुनरीक्षण याचिका को ग्रहण नहीं किया जा सकता । अपील फाइल करने की प्रक्रिया यह है कि राज्य सरकार को लोक अभियोजक को यह निदेश देना होगा कि वह ऐसी कोई अपील फाइल करे । किसी लोक अभियोजक द्वारा राज्य सरकार के निदेश पर फाइल की गई ऐसी कोई अपील उच्च न्यायलय द्वारा केवल उस समय ग्रहण की जा सकती है यदि उच्च न्यायालय इजाजत मंजूर करता है । अतः, लोक अभियोजक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1)(ख) और धारा 378(3) के उपबंधों का अनुपालन न करते हुए कोई पुनरीक्षण याचिका फाइल नहीं कर सकता । यह सुस्थापित विधिक स्थिति है कि जिस किसी वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता, उस वस्तु को पुनरीक्षण की शक्ति का अवलंब लेकर अप्रत्यक्ष रूप से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता और वह भी उस समय जब ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध विद्यान हो जो उस समय जब राज्य को अपील

करने का उपचार उपलब्ध है तो किसी पुनरीक्षण याचिका को ग्रहण किए जाने को वर्जित करता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(3), जो यह अनुबंधित करती है कि राज्य सरकार उच्च न्यायालय से इजाजत प्राप्त करने के पश्चात् किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील फाइल कर सकती है, का प्रयोजन सरकार द्वारा तुच्छ अपीलों को फाइल किए जाने से निवारित करना है और साथ ही ऐसे मामलों को समाप्त करना है क्योंकि दोषमुक्ति के आदेश के कारण अभियुक्त के निर्दोष होने की अवधारणा और अधिक मजबूत हो जाती है । यह स्कीम स्पष्ट रूप से दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील और सिद्धदोष ठहराए जाने के विरुद्ध अपील किए जाने में अंतर करती है । वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय ने इस मामले के प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया है । विधिक स्थिति के अनुसार राज्य सरकार को लोक अभियोजक को यह निदेश देना चाहिए था कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत करे । ऐसा कोई निदेश फाइल नहीं किया गया है । पुनरीक्षण याचिका में इस प्रभाव का कोई प्रकथन अंतर्विष्ट नहीं है कि वर्तमान पुनरीक्षण याचिका लोक अभियोजक द्वारा राज्य सरकार के निदेश पर फाइल की गई है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को ग्रहण नहीं किया जा सकता । निस्संदेह रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह स्वविवेकानुसार उसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर अवस्थित किसी निचले दांडिक न्यायालय के समक्ष किन्हीं कार्यवाहियों के अभिलेख को, अपने किसी निष्कर्ष के सही होने, विधिपूर्ण होने या उसके औचित्य के संबंध में समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकेगा और उसकी परीक्षा कर सकेगा । इसके अतिरिक्त, वह किसी दंडादेश या आदेश, चाहे उसे लेखबद्ध किया गया हो या पारित कर दिया गया हो और ऐसे निचले न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के संबंध में प्रश्न कर सकेगा और ऐसे किसी अभिलेख को मंगाए जाने के समय यह निदेश दे सकेगा कि किसी दंडादेश या आदेश के निष्पादन को निलंबित किया जाए और अभिलेख की परीक्षा के लंबित रहने के दौरान यदि अभियुक्त कारावास में है तो उसे जमानत पर या उसके स्वयं के बंधपत्र पर निर्मुक्त करने का निदेश दे सकेगा । उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार

किसी मामले में निचले न्यायालय के अभिलेखों की जांच कर सकता है किन्तु विधिक रूप से यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि ऐसा हस्तक्षेप यदा-कदा ही किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, सेशन न्यायालय ने एक मत बनाया है और यह नहीं कहा जा सकता कि सेशन न्यायालय द्वारा इस प्रकार बनाया गया मत इतना अधिक त्रुटिपूर्ण है कि इस न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(1) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मामले के अभिलेखों को अपने पास मंगाना चाहिए । सेशन न्यायालय के निर्णय और पुनरीक्षण याचिका में उठाए गए आधारों के परिशीलन से इस न्यायालय का यह समाधान नहीं होता कि वह यह उचित समझे कि इस मामले के अभिलेखों को परीक्षा हेतु अपने पास मंगाए । सेशन न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के पश्चात् वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया है और जैसा कि पूर्व में कथन किया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीली न्यायालय के निष्कर्ष और तर्क इतने अधिक त्रुटिपूर्ण हैं कि कोई भी न्यायालय प्रत्यर्थी को दोषमुक्त ठहराए जाने के समय इस प्रकार के निष्कर्ष नहीं निकालेगा । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है और उसे लंबित आवेदन के साथ इस आधार पर खारिज किया जाता है कि वे कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । (पैरा 6, 8, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 12 एस. सी. सी. 608 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2386 : **राजस्थान राज्य** बनाम **मोहिनूद्दीन जमाल अल्वी और अन्य** ;	7
[2013]	(2013) 2 एस. सी. सी. 17 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 395 : **सुभाष चंद** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ;	5
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 450 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 3104 : **राज्य** बनाम **संजीव नंदा** ;	7

[2011]	(2011) 9 एस. सी. सी. 354 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 573 : **दिल्ली एयरटेक सर्विसेस (प्रा.) लि.** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	7
[1989]	1989 क्रिमिनल ला जर्नल 127 (दिल्ली) : **पवन कुमार** बनाम **दिल्ली प्रशासन** ;	2
[1972]	(1972) 2 एस. सी. सी. 80 = ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2077 : **निक्का राम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ;	7
[1936]	ए. आई. आर. 1936 पी. सी. 253 : **नाजीर अहमद** बनाम **किंग एम्परर** ;	7
[1876]	(1876) 1 चैप्टर डी 426 : **टेलर** बनाम **टेलर** ।	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2018 की दांडिक पुनरीक्षण याचिका सं. 12.

वर्तमान पुनरीक्षण याचिका याची राज्य द्वारा अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एनडीपीएस) (पश्चिम), तीस हजारी न्यायालय, दिल्ली द्वारा दांडिक अपील सं. 67/2016 वाले मामले में तारीख 30 अगस्त, 2017 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके माध्यम से अपीली न्यायाधीश ने अभियुक्त/प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया था ।

याची की ओर से सुश्री मीनाक्षी अपर लोक अभियोजक

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अभिषेक कुमार, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति सुब्रामोणियम प्रसाद – वर्तमान याचिका, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) धारा 397/401 के अधीन फाइल किया गया है, के माध्यम से अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एनडीपीएस) (पश्चिम), तीस हजारी न्यायालय, दिल्ली द्वारा दांडिक अपील सं. 67/2016 वाले मामले में तारीख 30 अगस्त, 2017 को पारित उस आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके माध्यम से विद्वान्

सेशन न्यायाधीश ने विद्वान् मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट-07 (पश्चिम) तीस हजारी न्यायालय, दिल्ली द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2016 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और तारीख 2 सितम्बर, 2016 को पारित दंडादेश को अपास्त करते हुए अभियुक्त/प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया था ।

2. वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को फाइल किए जाने से संबंधित तथ्य संक्षेप में निम्नानुसार हैं –

(क) अभियोजन का पक्षकथन यह है कि तारीख 28 नवम्बर, 2006 को सायं लगभग 7.15 बजे वर्तमान मामले के अभियुक्त/प्रत्यर्थी ने शिकायतकर्ता, अर्थात् संदीप दत्ता की पिटाई की और उसे घोर उपहति कारित की और साथ ही उसने उसकी मारुति कार जिसका पंजीकरण सं. एच आर 26 एच 433 है, को भी नुकसान पहुंचाया । यह कथन किया गया है कि यह घटना पश्चिम विहार स्थित मकान सं. बीजी-6/344 के समीप घटित हुई थी । शिकायत के आधार पर पुलिस थाना पश्चिम विहार में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की सं. 73/2007, तारीख 24 जनवरी, 2007 के रूप में चिह्नित है और जिसके माध्यम से अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप् में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 325 और धारा 427 के अधीन अपराध करने के आरोप लगाए गए । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । सक्षम न्यायालय ने अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 325/427 के अधीन आरोप विरचित किए, जिसके संबंध में अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी ने अपने दोषी न होने का अभिवाक् किया और साथ ही विचारण का दावा किया ।

(ख) अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए चार साक्षियों की परीक्षा की । विद्वान् विचारण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आहत साक्षी, अर्थात् अभि. सा. 1 विश्वसनीय प्रतीत होता है और इसलिए विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य के आधार पर अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दंड संहिता की धारा 325 के अधीन अपराध करने के लिए दोषसिद्ध ठहराया । तारीख 2 सितम्बर, 2016 को विद्वान् मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त/वर्तमान

मामले के प्रत्यर्थी के विरुद्ध छह मास के कठोर कारावास को भोगने का दंडादेश पारित किया और साथ ही उसे 20,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का भी आदेश दिया (जिसका संदाय आहत/शिकायतकर्ता संदीप दत्ता को किया जाना था) । इसके अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा यह आदेश भी किया गया कि जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम की दशा में प्रत्यर्थी को 15 दिन का अतिरिक्त् साधारण कारावास भोगना होगा । अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389(3) के अधीन इस शर्त के अधीन फायदा मंजूर किया गया कि वह 10,000/- रुपए की राशि का एक निजी बंधपत्र प्रस्तुत करेगा और साथ ही समान रकम की एक प्रतिभूति भी प्रस्तुत करेगा ।

(ग) अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी ने उक्त आदेश के विरुद्ध सेशन न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की थी । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र लोक साक्षियों को अन्वेषण में सम्मिलित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है । यह पाया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अधीन किसी भी साधारण व्यक्ति को किसी सूचना की तामील नहीं की गई थी । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अधीन सूचना प्राप्त करने के पश्चात् लोक साक्षियों ने अन्वेषण में शामिल होने से इनकार कर दिया था और अन्वेषण अधिकारी ने ऐसे लोक साक्षियों के नामों और उनके पतों का कोई उल्लेख नहीं किया है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **पवन कुमार** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जब अन्वेषण अधिकारी द्वारा साक्षियों से संपर्क करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है, यद्यपि सुसंगत समय और स्थान पर अनेक ऐसे साक्षी उपस्थित थे, और अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र साक्षियों को न बुलाने के लिए किसी प्रकार का कोई समाधानप्रद स्पष्टीकरण भी उपलब्ध नहीं कराया गया है तो ऐसे में अभियोजन के पक्षकथन के संबंध में गंभीर संदेह उत्पन्न होते हैं । विद्वान् अपर सेशन

---

[1] 1989 क्रिमिनल ला जर्नल 127 (दिल्ली).

न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे कि घटना की तारीख 28 नवम्बर, 2006 और इस मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 24 जनवरी, 2007 को दर्ज कराई गई है, अर्थात् घटना की तारीख से लगभग 2 मास पश्चात् । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यद्यपि एमएलसी अभिलेख यह दर्शित करता है कि शिकायतकर्ता को घोर उपहतियां कारित हुई थीं, फिर भी यह कथन नहीं किया गया है कि शिकायतकर्ता अपना कथन प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं था । अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में कोई कारण नहीं बताया गया है कि अन्वेषण अधिकारी ने उसी तारीख को आहत/शिकायतकर्ता के कथन को लेखबद्ध क्यों नहीं किया था । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा यह उल्लेख भी किया गया है कि अपराध में प्रयुक्त हथियार को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया । उन्होंने इस तथ्य का भी उल्लेख किया है कि स्थल-नक्शा शिकायतकर्ता की निशानदेही पर तैयार किया गया था किन्तु स्थल-नक्शे पर शिकायतकर्ता के हस्ताक्षरों को अंकित नहीं किया गया है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे कि आहत/शिकायतकर्ता की, एमएलसी को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा नहीं की गई और साथ ही आहत/ शिकायतकर्ता को कारित हुई क्षतियों के संबंध में भी उसकी परीक्षा नहीं की गई है । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने अपील को मंजूर करते हुए अभियुक्त/वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दोषमुक्त कर दिया ।

(घ) सेशन न्यायालय के उक्त निर्णय से व्यथित होकर राज्य द्वारा उक्त निर्णय के विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण याचिका फाइल की गई है ।

3. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाली विद्वान् अपर लोक अभियोजक सुश्री मीनाक्षी चौहान तथा प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले श्री अभिषेक कुमार को सुना और साथ ही न्यायालय के अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।

4. इस न्यायालय की राय में याची राज्य द्वारा फाइल की गई वर्तमान पुनरीक्षण याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

5. दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 378(1) और धारा 378(3) को दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 के माध्यम से अंत:स्थापित किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1)(ख) उच्च न्यायालय

से भिन्न किसी अन्य न्यायालय द्‌वारा पारित दोषमुक्ति के किसी मूल या अपीली आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार द्‌वारा अपील फाइल किए जाने के संबंध में उपबंध करती है । अपील लोक अभियोजक द्‌वारा, राज्य सरकार द्‌वारा दिए गए निदेश के आधार पर प्रस्तुत की जाती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(3) यह उपबंध करती है कि किसी अपील पर केवल उच्च न्यायालय की इजाजत से ही कार्यवाही की जा सकती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1)(ख), धारा 378(3) और धारा 401(4) निम्नानुसार है :-

"दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 : दोषमुक्ति की दशा में अपील ।

*** *** ***

(ख) राज्य सरकार, किसी मामले में लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्‌वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीली आदेश से जो खंड (क) के अधीन आदेश नहीं है या पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्‌वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकेगी ।

*** *** ***

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(3) : उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन कोई भी अपील उच्च न्यायालय की इजाजत के बिना ग्रहण नहीं की जाएगी ।

*** *** ***

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 : उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्ति ।

*** *** ***

(4) जहां इस संहिता के अधीन अपील हो सकती है किन्तु कोई अपील नहीं की जाती है, वहां उस पक्षकारन की प्रेरणा पर, जो अपील कर सकता था, पुनरीक्षण की कोई कार्यवाही ग्रहण न की जाएगी ।"

माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सुभाष चंद** बनाम **राज्य (दिल्ली**

प्रशासन)[1] वाले मामले में 25वें संशोधन अधिनियम, 2005 द्वारा यथा संशोधित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1) और 378(3) का संक्षिप्त रूप से विश्लेषण किया । उक्त निर्णय निम्नानुसार है :-

> "17. प्रारंभ में यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(3) के अनुसार दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील संहिता की धारा 378(1)(ख) और धारा 378(2)(ख) के अधीन फाइल की जा सकती है किन्तु उसे उच्च न्यायालय की इजाजत के बिना ग्रहण नहीं किया जा सकता । संहिता की धारा 378(1)(क) यह उपबंध करती है कि ऐसे किसी मामले में, यदि किसी मजिस्ट्रेट द्वारा किसी संज्ञेय और गैर-जमानतीय अपराध के संबंध में दोषमुक्ति का कोई आदेश पारित किया जाता है तो जिला मजिस्ट्रेट लोक अभियोजक को यह निदेश दे सकता है कि वह सेशन न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकता है । संहिता की धारा 378 की उपधारा (1)(ख) यह उपबंध करती है कि, किसी मामले में, राज्य सरकार लोक अभियोजक को उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के मूल या अपीली आदेश से जो खंड (क) के अधीन आदेश नहीं है या पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने का निदेश दे सकती है । संहिता की धारा 378 की उपधारा (2) किसी मामले में, जिसमें दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 के अधीन गठित दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन या संहिता से भिन्न किसी अन्य केन्द्रीय अधिनियम के अधीन किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए सशक्त किसी अन्य अभिकरण द्वारा अन्वेषण किया गया है, पारित दोषमुक्ति के आदेश को निर्दिष्ट करती है । यह उपबंध उपधारा (1) के उपबंधों के समान है सिवाय इसके कि यहां "राज्य सरकार" शब्दों के स्थान पर "केन्द्रीय सरकार" शब्द रखे गए हैं ।
>
> 18. यदि हम धारा 378(1)(क) और (ख) का विश्लेषण करें

[1] (2013) 2 एस. सी. सी. 17 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 395.

तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार लोक अभियोजक को धारा 378(1)(ख) के अधीन सृजित किए गए स्पष्ट वर्जन के कारण किसी संज्ञेय और गैर-जमानतीय अपराध के संबंध में किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध किसी अपील को फाइल करने का निदेश दे सकती है । ऐसी अपीलें, अर्थात् किसी संज्ञेय और गैर-जमानतीय अपराध के संबंध में किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील केवल सेशन न्यायालय में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए निदेश के अनुसरण में लोक अभियोजक द्वारा फाइल की जा सकती है । संहिता की धारा 378(1)(ख) में "किसी भी मामले में" शब्दों का उपयोग किया गया है किन्तु उसमें राज्य सरकार के नियंत्रण से किसी संज्ञेय और गैर-जमानतीय अपराध के संबंध में किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेशों को बाहर रखा गया है । अतः, अन्य सभी मामलों में, जहां दोषमुक्ति के आदेशों को पारित किया जाता है, कोई लोक अभियोजक राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसरण में उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल कर सकता है ।

19. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (4) के अधीन ऐसी किसी मामले में जिसे किसी शिकायत के आधार पर संस्थित किया गया है, पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील का उपबंध किया गया है । उक्त धारा यह अधिकथित करती है कि ऐसे किसी मामले में, यदि शिकायतकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन प्रस्तुत करता है और उच्च न्यायालय अपील के संबंध में विशेष इजाजत मंजूर करता है तो उस दशा में शिकायतकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकता है । इस उपधारा में "विशेष इजाजत" शब्दों का उपयोग किया गया है, जबकि उपधारा (3), जो अन्य अपीलों से संबंधित है उसमें केवल "इजाजत" शब्द का उपयोग किया गया है । इस प्रकार, किसी शिकायतकर्ता द्वारा दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील फाइल किया जाना स्वयं में एक विशेष प्रवर्ग है । शिकायतकर्ता कोई प्राइवेट व्यक्ति या कोई

लोक सेवक हो सकता है । उपधारा (5) के परिशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि शिकायतकर्ता द्‌वारा "विशेष इजाजत" के लिए आवेदन फाइल किया जा सकता है । यह किसी ऐसे शिकायतकर्ता, जो लोक सेवक है, को छह मास तथा किसी अन्य मामले में शिकायतकर्ता को, 60 दिन की परिसीमा के अवधि मंजूर करता है, जिसके दौरान वह आवेदन फाइल कर सकता है । इस संबंध में उपधारा (6) भी काफी महत्वपूर्ण है । उक्त उपधारा (6) यह अधिकथित करती है कि यदि किसी मामले में, उपधारा (4) के अधीन "विशेष इजाजत" के लिए शिकायतकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया जाता है तो उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी । इस प्रकार, यदि शिकायतकर्ता को दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील करने हेतु "विशेष इजाजत" मंजूर नहीं की जाती है तो वह मामला वहीं समाप्त हो जाएगा । न तो जिला मजिस्ट्रेट और न ही राज्य सरकार दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध कोई अपील फाइल कर सकते हैं । इसके पीछे यह विचार प्रतीत होता है कि ऐसी किसी परिस्थिति में मामले को शांत (समाप्त) कर दिया जाना चाहिए ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है ।)

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(4) यह आज्ञापक बनाती है कि यदि दंड प्रक्रिया संहिता में किसी अपील के लिए उपबंध किया गया है और ऐसी कोई अपील दाखिल नहीं की जाती है तो ऐसी स्थिति में ऐसे पक्षकारों द्‌वारा, जो अपील फाइल कर सकते थे, पुनरीक्षण संबंधी कोई कार्यवाहियां नहीं लाई जा सकती । अतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 और धारा 400 के अधीन स्कीम यह अनुबंधित करती है कि जब किसी न्यायालय द्‌वारा पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने का अधिकार विद्‌यमान है तो ऐसी स्थिति में पुनरीक्षण याचिका को ग्रहण नहीं किया जा सकता । अपील फाइल करने की प्रक्रिया यह है कि राज्य सरकार को लोक अभियोजक को यह निदेश देना होगा कि वह ऐसी कोई अपील फाइल करे । किसी

लोक अभियोजक द्वारा राज्य सरकार के निदेश पर फाइल की गई ऐसी कोई अपील उच्च न्यायलय द्वारा केवल उस समय ग्रहण की जा सकती है यदि उच्च न्यायालय इजाजत मंजूर करता है । अतः, लोक अभियोजक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(1)(ख) और धारा 378(3) के उपबंधों का अनुपालन न करते हुए कोई पुनरीक्षण याचिका फाइल नहीं कर सकता । यह सुस्थापित विधिक स्थिति है कि जिस किसी वस्तु को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता, उस वस्तु को पुनरीक्षण की शक्ति का अवलंब लेकर अप्रत्यक्ष रूप से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता और वह भी उस समय जब ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध विद्यान हो जो उस समय जब राज्य को अपील करने का उपचार उपलब्ध है तो किसी पुनरीक्षण याचिका को ग्रहण किए जाने को वर्जित करता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(3), जो यह अनुबंधित करती है कि राज्य सरकार उच्च न्यायालय से इजाजत प्राप्त करने के पश्चात् किसी न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के किसी आदेश के विरुद्ध अपील फाइल कर सकती है, का प्रयोजन सरकार द्वारा तुच्छ अपीलों को फाइल किए जाने से निवारित करना है और साथ ही ऐसे मामलों को समाप्त करना है क्योंकि दोषमुक्ति के आदेश के कारण अभियुक्त के निर्दोष होने की अवधारणा और अधिक मजबूत हो जाती है । यह स्कीम स्पष्ट रूप से दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील और सिद्धदोष ठहराए जाने के विरुद्ध अपील किए जाने में अंतर करती है ।

7. यह सुस्थापित विधिक स्थिति है कि यदि किसी कर्तव्य के साथ कोई शक्ति विद्यमान है, जो यह आज्ञापक बनाती है कि किसी कार्य को विशिष्ट पद्धति से किया जाना है तो वह कार्य केवल उसी पद्धति से किया जाना है या फिर ऐसे कार्य को नहीं किया जाएगा तथा ऐसे कार्य को करने की अन्य सभी पद्धतियां प्रतिषिद्ध हैं । उक्त सिद्धांत को **टेलर** बनाम **टेलर**[1] वाले मामले में अधिकथित किया गया था, जिसमें यह संप्रेक्षण किया गया था कि जहां किसी न्यायालय को पहली बार कोई शक्ति प्रदत्त की जाती है और उसे प्रयोग करने की पद्धति को उल्लिखित किया जाता है तो वहां उससे यह अभिप्रेत है कि अन्य किसी

---

[1] (1876) 1 चैप्टर डी 426.

पद्धति को अपनाया नहीं जाना है । प्रिवी कौंसिल ने एक अन्य प्रमुख निर्णय में भी इस निर्णय में अधिकथित सिद्धांत का अनुसरण किया है, अर्थात् **नाजीर अहमद** बनाम **किंग एम्परर**[1], जिसमें निम्नानुसार संप्रेक्षण किया गया था :–

> "11. .... जहां कतिपय कार्य को कतिपय पद्धति में किए जाने की शक्ति प्रदान की गई है, वहां वह कार्य आवश्यक रूप से केवल उसी पद्धति में ही किया जाना चाहिए या फिर उसे नहीं किया जाना चाहिए । किसी अन्य पद्धति से किसी ऐसे कार्य को करना आवश्यक रूप से प्रतिषिद्ध है"

इस सिद्धांत को माननीय उच्चतम न्यायालय द्‌वारा अपने अनेक निर्णयों में संगत रूप से अनुसरित किया गया है [देखें – **राजस्थान राज्य** बनाम **मोहिनूद्दीन जमाल अल्वी और अन्य**[2], **राज्य** बनाम **संजीव नंदा**[3], **निक्का राम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[4], **दिल्ली एयरटेक सर्विसेस (प्रा.) लि.** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[5]]

8. वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय ने इस मामले के प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया है । विधिक स्थिति के अनुसार राज्य सरकार को लोक अभियोजक को यह निदेश देना चाहिए था कि वह उच्च न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत करे । ऐसा कोई निदेश फाइल नहीं किया गया है । पुनरीक्षण याचिका में इस प्रभाव का कोई प्रकथन अंतर्विष्ट नहीं है कि वर्तमान पुनरीक्षण याचिका लोक अभियोजक द्‌वारा राज्य सरकार के निदेश पर फाइल की गई है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को ग्रहण नहीं किया जा सकता ।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(5) निम्नानुसार है :–

> "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 : उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियां ।

---

[1] ए. आई. आर. 1936 पी. सी. 253.

[2] (2016) 12 एस. सी. सी. 608 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 2386.

[3] (2012) 8 एस. सी. सी. 450 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 3104.

[4] (1972) 2 एस. सी. सी. 80 = ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2077.

[5] (2011) 9 एस. सी. सी. 354 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 573.

*** *** ***

(5) जहां इस संहिता के अधीन अपील होती है किन्तु उच्च न्यायालय को किसी व्यक्ति द्‌वारा पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया गया है और उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा आवेदन इस गलत विश्वास के आधार पर किया गया था कि उससे कोई अपील नहीं होती है और न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है तो उच्च न्यायालय पुनरीक्षण के आवेदन को अपील की अर्जी मान सकता है और उस पर तद्‌नुसार कार्यवाही कर सकता है ।"

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(5) यह उपबंध करती है कि जब किसी व्यक्ति द्‌वारा उच्च न्यायालय में कोई अपील की जा सकती है किन्तु उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण हेतु कोई आवेदन फाइल किया जाता है और उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा आवेदन इस गलत विश्वास के आधार पर किया गया था कि उससे कोई अपील नहीं होती है और न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है तो उच्च न्यायालय पुनरीक्षण के आवेदन को अपील की अर्जी मान सकता है और उस पर तद्‌नुसार कार्यवाही कर सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता में 'व्यक्ति' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है किन्तु उसे दंड संहिता की धारा 11 में परिभाषित किया गया है । दंड संहिता की धारा 11 निम्नानुसार है :-

"11. 'व्यक्ति' – कोई भी कंपनी या संगम या व्यक्ति निकाय चाहे वह निगमित हो या नहीं, 'व्यक्ति' पद के अंतर्गत आता है ।"

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(5) राज्य को लागू नहीं हो सकती । यह कथन/तर्क नहीं दिया जा सकता कि राज्य को यह गलत विश्वास था कि सेशन न्यायालय द्‌वारा पारित आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती ।

10. निस्संदेह रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह स्वविवेकानुसार उसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर अवस्थित किसी निचले दांडिक न्यायालय के समक्ष किन्हीं कार्यवाहियों के अभिलेख को, अपने किसी निष्कर्ष के सही होने, विधिपूर्ण होने या उसके औचित्य के संबंध में समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकेगा और उसकी परीक्षा कर सकेगा । इसके

अतिरिक्त, वह किसी दंडादेश या आदेश, चाहे उसे लेखबद्ध किया गया हो या पारित कर दिया गया हो और ऐसे निचले न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के संबंध में प्रश्न कर सकेगा और ऐसे किसी अभिलेख को मंगाए जाने के समय यह निदेश दे सकेगा कि किसी दंडादेश या आदेश के निष्पादन को निलंबित किया जाए और अभिलेख की परीक्षा के लंबित रहने के दौरान यदि अभियुक्त कारावास में है तो उसे जमानत पर या उसके स्वयं के बंधपत्र पर निर्मुक्त करने का निदेश दे सकेगा । उच्च न्यायालय स्वविवेकानुसार किसी मामले में निचले न्यायालय के अभिलेखों की जांच कर सकता है किन्तु विधिक रूप से यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि ऐसा हस्तक्षेप यदा-कदा ही किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, सेशन न्यायालय ने एक मत बनाया है और यह नहीं कहा जा सकता कि सेशन न्यायालय द्वारा इस प्रकार बनाया गया मत इतना अधिक त्रुटिपूर्ण है कि इस न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(1) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मामले के अभिलेखों को अपने पास मंगाना चाहिए । सेशन न्यायालय के निर्णय और पुनरीक्षण याचिका में उठाए गए आधारों के परिशीलन से इस न्यायालय का यह समाधान नहीं होता कि वह यह उचित समझे कि इस मामले के अभिलेखों को परीक्षा हेतु अपने पास मंगाए । सेशन न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के पश्चात् वर्तमान मामले के प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया है और जैसा कि पूर्व में कथन किया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीली न्यायालय के निष्कर्ष और तर्क इतने अधिक त्रुटिपूर्ण हैं कि कोई भी न्यायालय प्रत्यर्थी को दोषमुक्त ठहराए जाने के समय इस प्रकार के निष्कर्ष नहीं निकालेगा ।

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका कायम रखे जाने योग्य नहीं है और उसे लंबित आवेदन के साथ इस आधार पर खारिज किया जाता है कि वे कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं ।

याचिका खारिज की गई ।

पु.

पप्पू उर्फ **दयाराम**

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(2012 की दांडिक अपील सं. 949)

तारीख 3 जून, 2021

न्यायमूर्ति सुजॉय पॉल और न्यायमूर्ति रोहित आर्य

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – अपीलार्थी के विरुद्ध हत्या का आरोप लगाया जाना – अभियोजन पक्ष द्वारा मृत्युकालीन कथन और अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि का दावा किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराया जाना – चुनौती – अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य की समीक्षा किए जाने पर यह पाया जाना कि वर्तमान मामले में दो मृत्युकालीन कथन विद्यमान हैं प्रथम कथन एक स्वतंत्र अभियोजन साक्षी के समक्ष किया गया जिसमें मृतक द्वारा किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं लिया गया और दूसरा कथन मृतक के सगे भाई के समक्ष किया गया जिसमें अभिकथित रूप से अपीलार्थी का नाम लिया गया – विचारण न्यायालय द्वारा प्रथम मृत्युकालीन कथन को परित्यक्त करते हुए दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लिया जाना – इसके अतिरिक्त, अंतिम बार एक साथ जीवित देखे जाने और मृतक को आहत अवस्था में कुएं में पाए जाने में दो दिन का अंतराल होना – अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण अथवा विश्वसनीय और युक्तियुक्त कारण उपलब्ध कराने में असफल रहना कि उक्त दो दिनों के दौरान क्या घटित हुआ – अभिलेख पर किसी अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य या सामग्री का विद्यमान न होना – मामले की सभी परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा अन्य सामग्री की समीक्षा किए जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचारण न्यायालय ने अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत के आधार पर तथा प्रथम मृत्युकाचलीन कथन की अनदेखी करते

हुए दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लेकर की गई दोषसिद्धि त्रुटिपूर्ण है और वर्तमान मामले में अपीलार्थी संदेह के लाभ के लिए हकदार है, अत:, अपील स्वीकार की गई और अपीलार्थी की दोषसिद्धि के निर्णय को उलट दिया गया ।

वर्तमान मामले का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी ने तारीख 26 अप्रैल, 2011 तथा तारीख 27 अपैल, 2011 के बीच मृतक भूपेन्द्र पर हमला किया और उसे एक कुएं में धकेल दिया । सोनकक्ष ग्राम (नरसिंहगढ़) के ग्रामीण व्यक्तियों ने भूपेन्द्र को जीवित अवस्था में पाया । मृतक भूपेन्द्र के सगे भाई केसरी (अभि. सा. 2) को इस संबंध में संसूचित किया गया । उसके पश्चात् धनसिंह (अभि. सा. 1), जो एक स्वतंत्र साक्षी है और केसरी (अभि. सा. 2) घटनास्थल पर पहुंचे और वहां उन्होंने यह देखा कि ग्रामीण भूपेन्द्र, जिसे कुएं के अन्दर आहत अवस्था में पाया गया था, को कुएं से बाहर निकाल कर बचाने का प्रयास कर रहे थे । उसके पश्चात्, भूपेन्द्र को कुएं से बाहर निकाला गया किन्तु उसके कुछ समय पश्चात् भूपेन्द्र की मृत्यु हो गई । अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार केसरी (अभि. सा. 2) उसे आहत अवस्था में एक जीप के माध्यम से अस्पताल ले गया था । घटनास्थल और अस्पताल के बीच यात्रा करते समय मार्ग में भूपेन्द्र ने केसरी (अभि. सा. 2) को यह जानकारी दी कि उस पर पप्पू **उर्फ** दया राम (अपीलार्थी) और तीन अन्य व्यक्तियों ने हमला किया था । उसने यह भी कथन किया कि पप्पू जो मृतक का साला है, ने उस पर हमला किया था किन्तु उक्त हमले में पप्पू का साथ देने वाले अन्य तीन व्यक्तियों से वह परिचित नहीं था । न्यायालय के समक्ष 15 अभियोजन साक्षियों की परीक्षा की गई और उन्होंने अपने कथनों के माध्यम से अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया । अपीलार्थी ने अपने दोषी होने से इनकार किया । अभियुक्त की ओर से किसी भी साक्षी को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया । निचले न्यायालय ने मृतका की पत्नी प्रागबाई (अभि. सा. 3) और देवचंद (अभि. सा. 10) द्‌वारा प्रस्तुत किए गए कथन पर विचार किया, जिसमें उन्होंने यह कथन किया है कि तारीख 26 अप्रैल, 2011 को भूपेन्द्र को पप्पू अपनी मोटर साइकिल पर बिठा कर ले गया था और उसने यह कहा था कि वे अपीलार्थी के भाई

के विवाह के निमंत्रण पत्रों का वितरण करने हेतु जा रहे थे । उसके पश्चात् भूपेन्द्र का कुछ अता-पता नहीं चला । तारीख 28 अप्रैल, 2011 को भूपेन्द्र आहत अवस्था में एक कुएं के भीतर पाया गया और उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई । अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त दोनों साक्षियों की परीक्षा यह दर्शित करने हेतु की गई थी कि मृतक को अंतिम बार उक्त साक्षियों ने पप्पू के साथ देखा था । निचले न्यायालय ने केसरी (अभि. सा. 2) द्वारा प्रस्तुत कथन को मौखिक मृत्युकालीन कथन के रूप में विचार में लिया । अंतिम बार एक साथ देखे जाने संबंधी साक्ष्य और पूर्वोक्त मृत्युकालीन कथन के आधार पर निचले न्यायालय ने यह राय तैयार की कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को सभी सुसंगत संदेहों से परे साबित किया है और इसके परिणामस्वरूप उसने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया और उसके विरुद्ध दंडादेश पारित किया । उक्त निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उक्त निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा प्रस्तुत दलीलों को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा अन्य सामग्री पर विचार करने तथा निर्दिष्ट मामला विधियों का परिशीलन करने के पश्चात् अपील को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय मृतक भूपेन्द्र द्वारा केसरी के समक्ष किए गए मौखिक मृत्युकालीन कथन पर आधारित है और इसके अतिरिक्त, विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने दोषसिद्धि का निर्णय सुनाते हुए मृतक की पत्नी प्रागबाई और देवचंद द्वारा अंतिम बार एक साथ देखे जाने के साक्ष्य पर आधारित उनके अभिसाक्ष्य का भी अवलंब लिया था । यह उल्लेखनीय है कि दोषसिद्धि को एकमात्र मृत्युकालीन कथन के आधार पर भी या यहां तक कि मौखिक मृत्युकालीन कथन के आधार पर लेखबद्ध किया जा सकता है । तथापि, ऐसा मृत्युकालीन कथन किसी भी संदेह से मुक्त होना चाहिए और उसे विश्वसनीयता की कड़ी संवीक्षा को उत्तीर्ण करना । यह भी समान रूप से स्थापित है कि मृत्युकालीन कथन की विश्वसनीयता न कि ऐसे कथन की बहुलता किसी मामले में सारवान् होती है । वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत कहानी के अनुसार मृतक भूपेन्द्र द्वारा दो

मौखिक मृत्युकालीन कथन किए गए हैं, पहला धनसिंह के समक्ष और दूसरा केसरी के समक्ष । पहले मृत्युकालीन कथन में मृतक ने अपीलार्थी या अन्य किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया । उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि उस पर दो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा हमला किया गया और उन्होंने उसे कुएं में धक्का दिया । अनिवार्य रूप से, इस स्वतंत्र अभियोजन साक्षी को अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही साक्षी घोषित नहीं किया गया था । इस प्रकृति के मामले में, जहां बहुल मृत्युकालीन कथन विद्यमान हैं, विचारण न्यायालय इस बाध्यता के अधीन है कि वह प्रत्येक मृत्युकालीन कथन की उसके सही और सटीक होने के संबंध में भलीभांति परीक्षा करे । यदि किसी विशिष्ट मृत्युकालीन कथन को किसी अन्य मृत्युकालीन कथन पर अधिमानता दी जाती है तो यह अपेक्षित है कि इस संबंध में पर्याप्त कारणों को लेखबद्ध किया जाए । इसी भाव को भिन्न रूप से दर्शित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि दूसरे मृत्युकालीन कथन पर विश्वास करते हुए उसका अवलंब लिया गया था तो अनिवार्य रूप से इस संबंध में पर्याप्त कारणों का कथन किया जाना चाहिए कि प्रथम मृत्युकालीन कथन पर विश्वास क्यों नहीं किया गया और किसी कमी के कारण उसे विश्वसनीय नहीं पाया गया । निचला न्यायालय पूर्णतया पूर्वोक्त कार्य करने में असफल रहा है और उसने यांत्रिक रूप से दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लिया है । किसी भी मृत्युकालीन कथन की ध्यानपूर्वक परीक्षा किया जाना अपेक्षित है क्योंकि कथन करने वाला व्यक्ति अब जीवित नहीं है और उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती । इस पृष्ठभूमि में मृत्युकालीन कथन की परीक्षा अत्यंत ध्यानपूर्वक और सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए । यदि दोनों मृत्युकालीन कथनों की एक दूसरे के साथ तुलना करते हुए परीक्षा की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि दोनों कथनों में स्पष्ट विसंगतियां और विरोधाभास विद्यमान हैं । प्रथम मृत्युकालीन कथन में किसी भी व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था और व्यक्तियों की संख्या के संबंध में यह बताया गया था कि अपराध करने में दो व्यक्ति सम्मिलित थे जबकि दूसरे मृत्युकालीन कथन में तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ अपीलार्थी का नाम लिया गया था और यह कहा गया था कि तीनों अज्ञात व्यक्ति अपीलार्थी के साथी थे । हमारे मत में इससे

मृत्युकालीन कथनों में गंभीर विसंगतियां और विरोधाभास दर्शित होते हैं जो दूसरे मृत्युकालीन कथन को भी संदेहास्पद बनाते हैं । अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराए जाने का एक अन्य कारण "अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत" पर आधारित है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है मृतक की पत्नी प्रागबाई और देवचंद द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य के अनुसार अपीलार्थी तारीख 26 अप्रैल, 2011 को मृतक को अपने साथ लेकर गया था और उसके बाद तारीख 28 अप्रैल, 2011 को मृतक को आहत अवस्था में कुएं के भीतर पाया गया । अभिलेख पर इस संबंध में किसी प्रकार की कोई सामग्री/साक्ष्य विद्यमान नहीं है जो यह दर्शित करती हो कि इन दो दिनों के दौरान क्या घटित हुआ । दोषसिद्धि को लेखबद्ध करने के लिए अंतिम बार एक साथ देखे जाने का सिद्धांत स्वयं में पर्याप्त साक्ष्य नहीं है और अभियोजन पक्ष को अभियुक्त के दोष को साबित करने के लिए परिस्थितियों की संपूर्ण श्रृंखला को स्थापित करना चाहिए । वर्तमान मामले में अंतिम बार एक साथ देखे जाने संबंधी साक्ष्य एक दुर्बल साक्ष्य है और केवल इस सिद्धांत के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त, केसरी को दिया गया दूसरा मृत्युकालीन कथन भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है और दोनों मृत्युकालीन कथनों में गंभीर विसंगतियां विद्यान हैं । पूर्वोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय आक्षेपित निर्णय को कायम रखे जाने में असमर्थ है । उच्च न्यायालय के मतानुसार अभियोजन पक्ष सभी सुसंगत संदेहों से परे अपने पक्षकथन को स्थापित करने में असफल रहा है और निचले न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत और दूसरे मृत्युकालीन कथन के आधार पर दोषसिद्धि को लेखबद्ध करके स्पष्ट रूप से त्रुटि कारित की है । उच्च न्यायालय के मतानुसार, यह एक ऐसा उचित मामला है जिसमें अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए । परिणामत:, सेशन विचारण सं. 223/2011 में पारित आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया गया । यदि अपीलार्थी अभिरक्षा में है और वह किसी अन्य अपराध के लिए अपेक्षित नहीं है तो उसे तुरंत निर्मुक्त किया जाए । अपील मंजूर की जाती है । (पैरा 12, 13, 14, 15, 20, 21, 23, 24 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	2016 क्रिमिनल ला जर्नल 2939 : **रामब्रक्ष** उर्फ **जालिम** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	7, 21
[2016]	(2016) 1 एस. सी. सी. 550 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3430 : **निजाम** बनाम **राजस्थान राज्य**	22
[2014]	(2014) 4 एस. सी. सी. 715 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. (अनु.) 788 : **कन्हैया लाल** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	22
[2014]	2014 एस. सी. सी. ऑनलाइन एम. पी. 8652 : **गुड्डी बाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	7, 15
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2519 : **सफी मुहम्मद** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	16
[2013]	2013 एस. सी. सी. ऑनलाइन एम. पी. 2491 : **करण** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	17
[2011]	(2011) 1 एमपीएचटी 50 : **जुगल** उर्फ **शब्बीर खान** ;	7,15
[2009]	(2009) 2 एमपीएचटी 313 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मुंशी लाल** ;	16
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 755 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. (अनु.) 61 : **गोवा राज्य** बनाम **संजय ठकरान** ;	22
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 172 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1656 : **राम रेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी** ;	22
[2005]	(2005) 5 एस. सी. सी. 272 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2000 एस. सी. 474 : **राजाराम** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	16

[2004]	(2004) 13 एस. सी. सी. 314 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 97 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **संजय डी. राजहंस** ;	12
[1999]	(1999) 8 एस. सी. सी. 458 = ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 59 : **हेकरुजाम चाउबा सिंह** बनाम **मणिपुर राज्य** ;	7, 12, 15
[1994]	ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 464 : **रामसाई और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	18
[1992]	(1992) एस. सी. सी. 223 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 374 : **कमला** बनाम **पंजाब राज्य** ।	7, 14, 15

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 949.

वर्तमान दांडिक अपील प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, नरसिंहगढ़, जिला राजगढ़ द्वारा सेशन विचारण सं. 233/2011 में तारीख 26 जुलाई, 2012 को पारित निर्णय को चुनौती देते हुए फाइल की गई है ।

अपीलार्थी की ओर से श्री तरुण कुशवाहा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री अर्चना खेर, उप महाधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुजॉय पॉल ने दिया ।

न्या. पॉल – वर्तमान दांडिक अपील दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 374 के अधीन प्रथम अपर सेशन न्यायाधीश, (त्वरित निपटान न्यायालय) नरसिंहगढ़, जिला राजगढ़ द्वारा सेशन विचारण सं. 233/2011 में तारीख 26 जुलाई, 2012 को पारित उस निर्णय को चुनौती देते हुए फाइल की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपराध करने का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और उसे आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था तथा उस पर पांच हजार रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया गया था, जिसके संदाय में व्यतिक्रम किए जाने की दशा में उसे छह मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगना होगा ।

2. संक्षेप में, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि अपीलार्थी ने तारीख 26 अप्रैल, 2011 तथा तारीख 27 अपैल, 2011 के बीच मृतक भूपेन्द्र पर हमला किया और उसे एक कुएं में धकेल दिया । सोनकक्ष ग्राम (नरसिंहगढ़) के ग्रामीण व्यक्तियों ने भूपेन्द्र को जीवित अवस्था में पाया । मृतक भूपेन्द्र के सगे भाई केसरी (अभि. सा. 2) को इस संबंध में संसूचित किया गया । उसके पश्चात् धनसिंह (अभि. सा. 1), जो एक स्वतंत्र साक्षी है और केसरी (अभि. सा. 2) घटनास्थल पर पहुंचे और वहां उन्होंने यह देखा कि ग्रामीण भूपेन्द्र, जिसे कुएं के अन्दर आहत अवस्था में पाया गया था, को कुएं से बाहर निकाल कर बचाने का प्रयास कर रहे थे । उसके पश्चात्, भूपेन्द्र को कुएं से बाहर निकाला गया किन्तु उसके कुछ समय पश्चात् भूपेन्द्र की मृत्यु हो गई । अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार केसरी (अभि. सा. 2) उसे आहत अवस्था में एक जीप के माध्यम से अस्पताल ले गया था । घटनास्थल और अस्पताल के बीच यात्रा करते समय मार्ग में भूपेन्द्र ने केसरी (अभि. सा. 2) को यह जानकारी दी कि उस पर पप्पू **उर्फ** दया राम (अपीलार्थी) और तीन अन्य व्यक्तियों ने हमला किया था । उसने यह भी कथन किया कि पप्पू जो मृतक का साला है, ने उस पर हमला किया था किन्तु उक्त हमले में पप्पू का साथ देने वाले अन्य तीन व्यक्तियों से वह परिचित नहीं था ।

3. न्यायालय के समक्ष 15 अभियोजन साक्षियों की परीक्षा की गई और उन्होंने अपने कथनों के माध्यम से अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया । अपीलार्थी ने अपने दोषी होने से इनकार किया । अभियुक्त की ओर से किसी भी साक्षी को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया ।

4. निचले न्यायालय ने मृतका की पत्नी प्रागबाई (अभि. सा. 3) और देवचंद (अभि. सा. 10) द्वारा प्रस्तुत किए गए कथन पर विचार किया, जिसमें उन्होंने यह कथन किया है कि तारीख 26 अप्रैल, 2011 को भूपेन्द्र को पप्पू अपनी मोटर साइकिल पर बिठा कर ले गया था और उसने यह कहा था कि वे अपीलार्थी के भाई के विवाह के निमंत्रण पत्रों का वितरण करने हेतु जा रहे थे । उसके पश्चात् भूपेन्द्र का कुछ अता-पता नहीं चला । तारीख 28 अप्रैल, 2011 को भूपेन्द्र आहत अवस्था में एक कुएं के भीतर पाया गया और उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई । अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त दोनों साक्षियों की परीक्षा यह दर्शित करने

हेतु की गई थी कि मृतक को अंतिम बार उक्त साक्षियों ने पप्पू के साथ देखा था ।

5. डा. संदीप नारायणी (अभि. सा. 13) ने शव-परीक्षा रिपोर्ट के आधार पर न्यायालय के समक्ष अपना अभिसाक्ष्य कथन प्रस्तुत किया और उसने यह कथन किया कि भूपेन्द्र के शव पर 18 क्षतियां पाई गई थीं (जिनका उल्लेख आक्षेपित निर्णय के पैरा 20 में किया गया है) । अभि. सा. 13 ने यह भी कथन किया कि मृत्यु का कारण मृतक के सिर पर आई क्षति तथा उसकी श्वसन प्रणाली का विफल होना और साथ ही अन्य जटिलताएं भी थीं । इस साक्षी ने संबद्ध पुलिस थाने के साथ हुई अपनी परस्पर संसूचनाओं को साबित किया जो प्रदर्श पी/17 के रूप में चिह्नित हैं और जिन पर उसके द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए गए हैं ।

6. निचले न्यायालय ने केसरी (अभि. सा. 2) द्वारा प्रस्तुत कथन को मौखिक मृत्युकालीन कथन के रूप में विचार में लिया । अंतिम बार एक साथ देखे जाने संबंधी साक्ष्य और पूर्वोक्त मृत्युकालीन कथन के आधार पर निचले न्यायालय ने यह राय तैयार की कि अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को सभी सुसंगत संदेहों से परे साबित किया है और इसके परिणामस्वरूप उसने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया और उसके विरुद्ध दंडादेश पारित किया ।

7. श्री तरुण कुशवाहा, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह अनुरोध किया गया कि धनसिंह (अभि. सा. 1) स्वतंत्र साक्षी है, जिसने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया है कि जब वह अन्य व्यक्तियों के साथ घटनास्थल, अर्थात् सोनकक्ष स्थित कुएं के पास पहुंचा तो उसने यह देखा था कि भूपेन्द्र कुएं के भीतर गिरा हुआ था । ग्रामीणों की सहायता से भूपेन्द्र को कुएं से बाहर निकाला गया । उस समय तक, भूपेन्द्र का सगा भाई केसरी (अभि. सा. 2) भी घटनास्थल पर पहुंच गया था । भूपेन्द्र ने धनसिंह (अभि. सा. 1) को यह सूचित किया था कि बीनागंज के दो अज्ञात व्यक्तियों ने उसे कुएं में धकेला था । यह संसूचना भूपेन्द्र द्वारा केवल धनसिंह (अभि. सा. 1) को दी गई थी । विद्वान् काउंसेल ने इस

न्यायालय का ध्यान धनसिंह (अभि. सा. 1) की प्रतिपरीक्षा की ओर आकर्षित किया और अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील प्रस्तुत की कि अभि. सा. 1 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि केवल दो अज्ञात व्यक्तियों ने मृतक भूपेन्द्र को कुएं में धकेला था । यह प्रतिवाद करने के लिए केसरी (अभि. सा. 2) के कथन का अवलंब लिया गया है कि उस साक्षी, जो मृतक का सगा भाई है, द्वारा एक भिन्न कहानी प्रस्तुत की गई है । इस साक्षी द्वारा यह अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि जब वह आहत भूपेन्द्र को एक जीप के माध्यम से अस्पताल ले जा रहा था तो उसने मृतक भूपेन्द्र से यह पूछा था कि उस पर किसने हमला किया था । इस प्रश्न के उत्तर में भूपेन्द्र ने उसे यह सूचित किया था कि उसके साले (अपीलार्थी) ने अन्य तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ उस पर हमला किया था और उसे कुएं में धकेल दिया था । अस्पताल पहुंचने से पहले ही भूपेन्द्र की मृत्यु हो गई थी । उक्त अभियोजन साक्षी द्वारा यह अभिसाक्ष्य भी प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी भूपेन्द्र को तारीख 26 अप्रैल, 2011 को उसके घर से अपने साथ ले गया था । अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि दोनों मृत्युकालीन कथन एक दूसरे से भिन्न हैं । इसलिए निचले न्यायालय के लिए यह सर्वथा अनुचित था कि वह अभि. सा. 1 के समक्ष किए गए प्रथम मृत्युकालीन कथन की अनदेखी करे तथा मृतक द्वारा अपने नातेदार (अभि. सा. 2) के समक्ष किए गए दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लेकर अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराए । विद्वान् काउंसेल द्वारा **हेकरुजाम चाउबा सिंह** बनाम **मणिपुर राज्य**[1] तथा **रामब्रक्ष** उर्फ **जालिम** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[2] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि दोनों मृत्युकालीन कथनों में गंभीर विरोधाभास अंतर्वलित हैं । इस प्रकार निचले न्यायालय ने 'अंतिम बार एक साथ देखे जाने' और केवल द्वितीय मृत्युकालीन कथन के आधार पर आक्षेपित निर्णय पारित करके त्रुटि की है । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया है कि 'मर्ग' संसूचना

---

[1] (1999) 8 एस. सी. सी. 458 = ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 59.

[2] 2016 क्रिमिनल ला जर्नल 2939.

(प्रदर्श पी/22) जिसे केसरी (अभि. सा. 2) द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना के आधार पर लेखबद्ध किया गया है, स्पष्ट रूप से यह दर्शित करती है कि भूपेन्द्र की मृत्यु इस कारण से हुई है कि वह कुएं में गिरा था । यह उल्लेख नहीं किया गया है कि किसी व्यक्ति ने उस पर हमला किया था या मृतक को कुएं में धकेला गया था । इसी प्रयोजन के लिए डा. नारायणी (अभि. सा. 13) द्वारा संबद्ध पुलिस थाने को प्रस्तुत की गई संसूचना (प्रदर्श पी/17) का अवलंब लिया गया है, जिसमें उपचार करने वाले डाक्टर द्वारा मृत्यु के समान कारण को उल्लिखित किया गया है । इन दस्तावेजों के आधार पर श्री कुशवाहा द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई कि यदि यह मामला अपीलार्थी द्वारा मृतक पर हमला करने और उसे कुएं में धकेलने का होता तो केसरी (अभि. सा. 2) ने अवश्य ही इस कारण को 'मर्ग' संबंधी संसूचना को लेखबद्ध करते समय उल्लिखित किया होता । इस प्रकार भूपेन्द्र द्वारा अभिकथित रूप से केसरी (अभि. सा. 2) के समक्ष किए गए मृत्युकालीन कथन की किसी भी प्रकार की सामग्री के माध्यम से पुष्टि नहीं की गई है और इसलिए यह विश्वास किए जाने योग्य नहीं है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी प्रतिवाद किया है कि धनसिंह (अभि. सा. 1) जिसके समक्ष मृतक द्वारा प्रथम मौखिक मृत्युकालीन कथन किया गया था, को अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही साक्षी घोषित नहीं किया गया है । इस प्रकार, उसके द्वारा प्रस्तुत कथन की अनदेखी या उस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता । जब किसी मामले में अनेक मृत्युकालीन कथन विद्यामान हों तो ऐसी स्थिति में केवल उस मृत्युकालीन कथन का अवलंब लिया जाना चाहिए, जो अभियुक्त के पक्ष में है । इस संबंध में, **हेकरुजाम चाउबा सिंह** बनाम **मणिपुर राज्य** (उपरोक्त), **कमला** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **गुड्डी बाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] और **जुगल** उर्फ **शब्बीर खान**[3] वाले मामलों का भी अवलंब लिया गया है । इस न्यायालय का ध्यान डा. संदीप नारायणी (अभि. सा. 13) द्वारा प्रस्तुत कथन की

---

[1] (1992) एस. सी. सी. 223 = ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 374.

[2] 2014 एस. सी. सी. ऑनलाइन एम. पी. 8652.

[3] (2011) 1 एमपीएचटी 50.

ओर आकर्षित किया गया, जिन्होंने मृतक का शव-परीक्षण किया था और यह अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया था कि मृतक के शव पर पाई गई क्षतियां कुएं में गिरने के कारण कारित हो सकती हैं । आर. पी. पाठक (अभि. सा. 15) मामले के अन्वेषण अधिकारी के कथन का अवलंब लेते हुए यह प्रतिवाद किया गया है कि इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि केसरी (अभि. सा. 2) ने उसे उसके मृतक भाई भूपेन्द्र द्वारा उसके समक्ष किए गए किसी मौखिक मृत्युकालीन कथन के संबंध में कोई सूचना नहीं दी थी । अपीलार्थी और मृतक, जो निकट नातेदार हैं, के बीच कोई पूर्व शत्रुता विद्यमान न होने के कारण तथा मामले में कोई अन्य हेतुक उपलब्ध न होने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी को हत्या करने के लिए दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

8. अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत के आधार पर पारित आक्षेपित निर्णय की आलोचना करते हुए यह दलील दी है कि मृतक की पत्नी प्रागबाई (अभि. सा. 3) और देवचंद (अभि. सा. 10) के कथनों के अनुसार अपीलार्थी मृतक को तारीख 26 अप्रैल, 2011 को किसी नातेदार के विवाह के निमंत्रण पत्रों को वितरित करने हेतु अपने साथ ले गया था । उसके पश्चात्, यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि वह अगले दो दिन तक अपीलार्थी के साथ रहा । किसी पुष्टि की अनुपस्थिति में अंतिम बार एक साथ देखे जाने का सिद्धांत अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित करने हेतु पर्याप्त नहीं है । इसके अतिरिक्त, धन सिंह (अभि. सा. 1) और केसरी (अभि. सा. 2) के कथनों के अनुसार अपराध में एक से अधिक व्यक्ति संलिप्त थे । पुलिस ने अन्य व्यक्तियों के संलिप्त होने के संबंध में कोई अन्वेषण करने का प्रयास नहीं किया है । किसी पुष्टि के अभाव में और अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से भूपेन्द्र को ले जाने की तारीख और उस तारीख, जिसको वह कुएं में पाया गया था, के बीच समय अंतराल को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी को एकमात्र रूप से अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत के आधार पर सिद्धदोष नहीं ठहराया जा सकता । पूर्वोक्त दलील के समर्थन में अपीलार्थी ने लिखित दलीलें भी फाइल की हैं ।

9. एक प्रतिकूल टिप्पणी करते हुए सुश्री अर्चना खेर, विद्वान् उपमहाधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया । उन्होंने यह दलील प्रस्तुत की है कि यद्यपि इस घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है फिर भी अभियोजन का पक्षकथन अंतिम बार एक साथ देखे जाने और मृतक भूपेन्द्र द्वारा केसरी (अभि. सा. 2) के समक्ष किए गए मृत्युकालीन कथन पर आधारित है । निचले न्यायालय ने पूर्वोक्त साक्ष्य का मूल्यांकन करने में कोई त्रुटि नहीं की है और उसने सही रूप से आक्षेपित आदेश पारित किया है ।

10. पक्षकारों ने ऊपर उपदर्शित की गई सीमा तक अपने तर्कों को सीमित रखा ।

11. हमने दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए विरोधी प्रतिवादों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

मौखिक मृत्युकालीन कथन

12. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय मृतक भूपेन्द्र द्वारा केसरी (अभि. सा. 2) के समक्ष किए गए मौखिक मृत्युकालीन कथन पर आधारित है और इसके अतिरिक्त, विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने दोषसिद्धि का निर्णय सुनाते हुए मृतक की पत्नी प्रागबाई (अभि. सा. 3) और देवचंद (अभि. सा. 10) द्वारा अंतिम बार एक साथ देखे जाने के साक्ष्य पर आधारित उनके अभिसाक्ष्य का भी अवलंब लिया था । यह उल्लेखनीय है कि दोषसिद्धि को एकमात्र मृत्युकालीन कथन के आधार पर भी या यहां तक कि मौखिक मृत्युकालीन कथन के आधार पर लेखबद्ध किया जा सकता है । तथापि, ऐसा मृत्युकालीन कथन किसी भी संदेह से मुक्त होना चाहिए और उसे विश्वसनीयता की कडी संवीक्षा को उत्तीर्ण करना चाहिए [देखें : **हेकरुजाम चाउबा सिंह** बनाम **मणिपुर राज्य** (उपरोक्त) वाला मामला] । यह भी समान रूप से स्थापित है कि मृत्युकालीन कथन की विश्वसनीयता न कि ऐसे कथन की बहुलता किसी मामले में सारवान् होती है [देखें : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **संजय डी. राजहंस**[1] वाला मामला]

---

[1] (2004) 13 एस. सी. सी. 314 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 97.

13. वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत कहानी के अनुसार मृतक भूपेन्द्र द्वारा दो मौखिक मृत्युकालीन कथन किए गए हैं, पहला धन सिंह (अभि. सा. 1) के समक्ष और दूसरा केसरी (अभि. सा. 2) के समक्ष । पहले मृत्युकालीन कथन में मृतक ने अपीलार्थी या अन्य किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया । उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि उस पर दो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा हमला किया गया और उन्होंने उसे कुएं में धक्का दिया । अनिवार्य रूप से, इस स्वतंत्र अभियोजन साक्षी को अभियोजन पक्ष द्वारा पक्षद्रोही साक्षी घोषित नहीं किया गया था ।

इस प्रकृति के मामले में, जहां बहुल मृत्युकालीन कथन विद्यमान हैं, विचारण न्यायालय इस बाध्यता के अधीन है कि वह प्रत्येक मृत्युकालीन कथन की उसके सही और सटीक होने के संबंध में भली-भांति परीक्षा करे । यदि किसी विशिष्ट मृत्युकालीन कथन को किसी अन्य मृत्युकालीन कथन पर अधिमानता दी जाती है तो यह अपेक्षित है कि इस संबंध में पर्याप्त कारणों को लेखबद्ध किया जाए । इसी भाव को भिन्न रूप से दर्शित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि दूसरे मृत्युकालीन कथन पर विश्वास करते हुए उसका अवलंब लिया गया था तो अनिवार्य रूप से इस संबंध में पर्याप्त कारणों का कथन किया जाना चाहिए कि प्रथम मृत्युकालीन कथन पर विश्वास क्यों नहीं किया गया और किसी कमी के कारण उसे विश्वसनीय नहीं पाया गया ।

निचला न्यायालय पूर्णतया पूर्वोक्त कार्य करने में असफल रहा है और उसने यांत्रिक रूप से दूसरे मृत्युकालीन कथन का अवलंब लिया है ।

14. किसी भी मृत्युकालीन कथन की ध्यानपूर्वक परीक्षा किया जाना अपेक्षित है क्योंकि कथन करने वाला व्यक्ति अब जीवित नहीं है और उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती । इस पृष्ठभूमि में मृत्युकालीन कथन की परीक्षा अत्यंत ध्यानपूर्वक और सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए [देखें : **कमला** बनाम **पंजाब राज्य** (उपरोक्त) वाला मामला] ।

15. यदि दोनों मृत्युकालीन कथनों की एक दूसरे के साथ तुलना करते हुए परीक्षा की जाती है तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि दोनों कथनों में स्पष्ट विसंगतियां और विरोधाभास विद्यमान हैं । प्रथम मृत्युकालीन

कथन में किसी भी व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था और व्यक्तियों की संख्या के संबंध में यह बताया गया था कि अपराध करने में दो व्यक्ति सम्मिलित थे जबकि दूसरे मृत्युकालीन कथन में तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ अपीलार्थी का नाम लिया गया था और यह कहा गया था कि तीनों अज्ञात व्यक्ति अपीलार्थी के साथी थे । हमारे मत में इससे मृत्युकालीन कथनों में गंभीर विसंगतियां और विरोधाभास दर्शित होते हैं जो दूसरे मृत्युकालीन कथन को भी संदेहास्पद बनाते हैं । **कमला** बनाम **पंजाब राज्य** (उपरोक्त) और **हेकरुजाम चाउबा सिंह** बनाम **मणिपुर राज्य** (उपरोक्त) वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय ने मृत्युकालीन कथन में विद्यामन विसंगतियों के कारण आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप किया । इसी प्रकार का मत **गुड्डी बाई** (उपरोक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा लिया गया था । इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने **जुगल** उर्फ **शब्बीर खान** (उपरोक्त) वाले मामले में यह राय अभिव्यक्त की थी कि यदि एक से अधिक मृत्युकालीन कथन विद्यमान हैं और वे सारवान् बिन्दुओं से संबंधित हैं और वे परस्पर विरोधाभासी हैं तो निश्चित रूप से इसका फायदा अभियुक्त को दिया जाना चाहिए और ऐसी दशा में उक्त मृत्यकालीन कथनों को सत्य नहीं माना जा सकता । इसके अतिरिक्त, यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलार्थी को दोषी ठहराने के लिए ऐसे मृत्युकालीन कथनों का अवलंब नहीं लिया जा सकता ।

16. इस प्रकार हमारे मत में, निचले न्यायालय ने दूसरे मृत्युकालीन कथन के आधार पर दोषसिद्धि के निर्णय को लेखबद्ध करके त्रुटि की है । प्रथम मृत्युकालीन कथन धन सिंह (अभि. सा. 1) के समक्ष प्रस्तुत किया गया था । अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 1 को पक्षद्रोही साक्षी घोषित नहीं किया । विधि में यह पूर्णतया सुस्थापित है कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा किसी साक्षी को पक्षद्रोही साक्षी घोषित नहीं किया जाता है तो उसके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का फायदा अभियुक्त को प्राप्त होना चाहिए न कि अभियोजन पक्ष को । [देखें : **राजा राम** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाला मामला] । इसी सिद्धांत का अनुसरण **सफी**

---

[1] (2005) 5 एस. सी. सी. 272 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2000 एस. सी. 474.

मुहम्मद बनाम **राज्यस्थान राज्य**[1] वाले मामले में भी किया गया था । इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **मुंशी लाल**[2] वाले मामले में **राजा राम** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित निर्णय अनुपात का अनुसरण किया और यह राय अभिव्यक्त की कि अभियोजन पक्ष ऐसे अभियोजन साक्षियों के कथनों से आबद्ध है, जिन्हें उसके द्‌वारा पक्षद्रोही साक्षी घोषित नहीं किया गया है । इस कारणवश अभि. सा. 1 द्‌वारा प्रस्तुत कथन तथा उसके समक्ष दिया गया मृत्युकालीन कथन विश्वास किए जाने योग्य था और उसकी अनदेखी तथा उसे परित्यक्त नहीं किया जा सकता था । इसके अतिरिक्त, स्वीकार्य रूप से धन सिंह (अभि. सा. 1) एक स्वतंत्र साक्षी था जबकि केसरी (अभि. सा. 2) मृतक का सगा भाई है ।

17. इसके अलावा, 'मर्ग' संसूचना लेखबद्ध कराए जाने के समय केसरी (अभि. सा. 2) ने अस्पताल प्राधिकारियों को मृतक पर हमला किए जाने और उसे कुएं में फेंकने की घटना के संबंध में कोई जानकारी नहीं दी थी । वस्तुतः, उसने यह सूचित किया था कि भूपेन्द्र कुंए में गिर गया था । इस न्यायालय ने **करण** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[3] वाले मामले में यह राय अभिव्यक्त की है कि मर्ग संसूचना में प्रमुख अभियोजन साक्षी द्‌वारा यह उल्लेख किया गया कि अपराध 'एक व्यक्ति' द्‌वारा किया गया, जिसके नाम को उसके द्‌वारा प्रकट नहीं किया गया जबकि, उसके पश्चात् उक्त साक्षी द्‌वारा प्रस्तुत किए गए अभिसाक्ष्य में उसने उस व्यक्ति का नाम लेते हुए यह कथन किया कि उक्त व्यक्ति उसका परिचित था और उसने अभिकथित अपराध किया है । चूंकि, मर्ग संसूचना के समय उस व्यक्ति का नाम नहीं लिया गया था इसलिए उक्त साक्षी के कथन को विश्वसनीय नहीं माना गया ।

18. **रामसाई और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[4] वाले मामले में विचारण न्यायालय ने केवल एक अभियोजन साक्षी, अर्थात् अभि. सा. 29

---

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2519.

[2] (2009) 2 एमपीएचटी 313.

[3] 2013 एस. सी. सी. ऑनलाइन एम. पी. 2491.

[4] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 464.

द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का अवलंब लिया और विद्वान् विचारण न्यायालय ने अन्य कथनों को परित्यक्त किया । दिलचस्प रूप से, उक्त मामले में अभि. सा. 29 ने किसी भी व्यक्ति को अभिकथित मौखिक मृत्युकालीन कथन के संबंध में जानकारी नहीं दी थी और उसने उसके पश्चात् एक दिन यह तथ्य पुलिस निरीक्षक के समक्ष प्रकट किया था, चूंकि इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं कराया गया था कि उक्त साक्षी द्वारा पूर्व में यह जानकारी प्रकट क्यों नहीं की गई, इसलिए न्यायालय ने उसके द्वारा प्रस्तुत कथन पर विश्वास नहीं किया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निस्संदेह रूप से मृत्युकालीन कथन साक्ष्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है किन्तु उसे सभी प्रकार की त्रुटियों और विसंगतियों से मुक्त होना चाहिए । मृत्युकालीन कथन में विसंगतियां और विरोधाभास विद्यामन होने की दशा में उनके संबंध में पुष्टिकारक साक्ष्य विद्यमान होना चाहिए । उच्चतम न्यायालय द्वारा भी यह राय अभिव्यक्ति की गई है कि पूर्वोक्त दोष को ध्यान में रखते हुए एकमात्र मौखिक मृत्युकालीन कथन के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय सुनाना असुरक्षित होगा ।

19. इसके अतिरिक्त्, आर. पी. पाठक (अभि. सा. 15), जो वर्तमान मामले के अन्वेषण अधिकारी हैं, ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया है कि केसरी (अभि. सा. 2) ने उसे किसी मौखिक मृत्युकालीन कथन के संबंध में अन्वेषण के दौरान किसी प्रकार की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं कराई थी । किसी भी अन्य अभियोजन साक्षी ने दूसरे मृत्युकालीन कथन के संबंध में केसरी (अभि. सा. 2) द्वारा प्रस्तुत किए गए कथन का समर्थन नहीं किया है । इस प्रकार यहां ऊपर उल्लिखित सामूहिक कारणों से दूसरे मृत्युकालीन कथन पर निचले न्यायालय को विश्वास नहीं करना चाहिए था और उसके आधार पर अपीलार्थी को सिद्धदोष नहीं ठहराया जाना चाहिए था ।

अंतिम बार एक साथ देखे जाने का सिद्धांत :

20. अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराए जाने का एक अन्य कारण "अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत" पर आधारित है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है मृतक की पत्नी प्रागबाई (अभि. सा. 3) और

देवचंद (अभि. सा. 10) द्वारा प्रस्तुत अभिसाक्ष्य के अनुसार अपीलार्थी तारीख 26 अप्रैल, 2011 को मृतक को अपने साथ लेकर गया था और उसके बाद तारीख 28 अप्रैल, 2011 को मृतक को आहत अवस्था में कुएं के भीतर पाया गया । अभिलेख पर इस संबंध में किसी प्रकार की कोई सामग्री/साक्ष्य विद्यमान नहीं है जो यह दर्शित करती हो कि इन दो दिनों के दौरान क्या घटित हुआ ।

21. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **रामब्रक्ष** उर्फ **जालिम** (उपरोक्त) वाले मामले में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि दोषसिद्धि को लेखबद्ध करने के लिए अंतिम बार एक साथ देखे जाने का सिद्धांत स्वयं में पर्याप्त साक्ष्य नहीं है और अभियोजन पक्ष को अभियुक्त के दोष को साबित करने के लिए परिस्थितियों की संपूर्ण श्रृखंला को स्थापित करना चाहिए । इस मामले में भी स्वतंत्र अभियोजन साक्षी ने अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत कहानी का समर्थन नहीं किया और इसलिए माननीय उच्चतम न्यायालय ने दोषसिद्धि के निर्णय को उलट दिया था ।

22. **निजाम** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में यह निर्णीत किया गया था कि एकमात्र रूप से "अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत" के आधार पर दोषसिद्धि करना युक्तियुक्त नहीं है । उक्त सिद्धांत को अभियोजन के संपूर्ण पक्षकथन को ध्यान में रखते हुए और साथ ही उन परिस्थितियों को, जो अंतिम बार एक साथ देखे जाने के समय के पश्चात् और उससे पूर्व घटित हुई, विचार में लेते हुए लागू किया जाना चाहिए । इसी प्रकार, **कन्हैया लाल** बनाम **राजस्थान राज्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अंतिम बार एक साथ देखे जाने की परिस्थिति स्वयमेव और अनिवार्य रूप से यह निष्कर्ष प्रदान नहीं करती कि अभियुक्त ने ही अपराध को कारित किया है । अभिलेख पर आवश्यक रूप से ऐसी अन्य सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए जो अभियुक्त और अपराध के बीच संबंध स्थापित करे । **रामरेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी**[3] वाले मामले में और उसके पश्चात् **गोवा राज्य** बनाम **संजय**

---

[1] (2016) 1 एस. सी. सी. 550 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3430.

[2] (2014) 4 एस. सी. सी. 715 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. (अनु.) 788.

[3] (2006) 10 एस. सी. सी. 172 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1656.

ठकरान[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे मामलों में भी जहां अभियुक्त और मृतक को एक साथ जीवित देखे जाने के समय बिंदु और मृतक को मृत पाए जाने के समय बिंदु के बीच समय अंतराल काफी कम है, अन्य व्यक्तियों द्वारा हत्या का अपराध कारित करने की संभावना को पूर्णरूपेण नकारा नहीं जा सकता ।

23. उच्चतम न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निर्णयों में अधिकथित सिद्धातों को ध्यान में रखते हुए इस संबंध में कोई संदेह विद्यमान नहीं है कि वर्तमान मामले में अंतिम बार एक साथ देखे जाने संबंधी साक्ष्य एक दुर्बल साक्ष्य है और केवल इस सिद्धांत के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त, केसरी (अभि. सा. 2) को दिया गया दूसरा मृत्युकालीन कथन भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है और दोनों मृत्युकालीन कथनों में गंभीर विसंगतियां विद्यमान हैं ।

24. पूर्वोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, हम आक्षेपित निर्णय को कायम रखे जाने में असमर्थ हैं । हमारे मतानुसार, अभियोजन पक्ष सभी सुसंगत संदेहों से परे अपने पक्षकथन को स्थापित करने में असफल रहा है और निचले न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत और दूसरे मृत्युकालीन कथन के आधार पर दोषसिद्धि को लेखबद्ध करके स्पष्ट रूप से त्रुटि कारित की है । हमारे मतानुसार, यह एक ऐसा उचित मामला है जिसमें अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए । परिणामतः, सेशन विचारण सं. 223/2011 में पारित आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है । यदि अपीलार्थी अभिरक्षा में है और वह किसी अन्य अपराध के लिए अपेक्षित नहीं है तो उसे तुरंत निर्मुक्त किया जाए ।

25. अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

पु.

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 755 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. (अनु.) 61.

मंगू सिंह

बनाम

राजस्थान राज्य

(2012 की खंडपीठ दांडिक अपील सं. 57)

तारीख 13 जनवरी, 2021

न्यायमूर्ति संदीप मेहता और न्यायमूर्ति दवेन्द्र कछवाहा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या का अपराध – अभिकथित रूप से अभियुक्त और मृतक के बीच 'बाड़ा' के संबंध में कतिपय विवाद चल रहा था जिसके कारण अभियुक्त द्वारा मृतक के घर जाकर उसे घर से बाहर बुलाया जाना – पीड़ित के बाहर आते ही अभियुक्त द्वारा एक चाकू से उसकी छाती पर बलपूर्वक वार किया जाना – मृतक के भाई द्वारा इस प्रभाव का साक्ष्य दिया जाना कि अभियुक्त ने पीड़ित को घर से बाहर बुलाकर उसकी छाती में अकस्मात् चाकू घोंप दिया – अभियुक्त की गिरफ्तारी के पश्चात् उसकी निशानदेही पर उसके रक्त से सने वस्त्रों तथा अपराध में प्रयुक्त चाकू का अभिग्रहण किया जाना – न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार घटनास्थल से एकत्रित की गई रक्त से सनी मिट्टी, मृतक के वस्त्रों, अभियुक्त के वस्त्रों और अपराध में प्रयुक्त चाकू पर समान 'ओ' समूह का रक्त पाया जाना, जो कि मृतक का है – अभियुक्त द्वारा उसके वस्त्रों तथा उसके निशानदेही पर बरामद चाकू पर विद्यमान रक्त के धब्बों के संबंध में कोई स्पष्टीकरण देने में असफल रहना – स्पष्ट रूप से यह मामला सोच-समझकर की गई हत्या का मामला है और अभियुक्त ने बिना किसी उत्प्रेरण के सोच-समझकर जानते-बूझते हुए पीड़ित पर चाकू से इस प्रकार बलपूर्वक वार किया, जो उसकी मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था, अतः, अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत किया गया यह अभिवाक् कि मामले का अल्पीकरण करके उसके संबंध में दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अधीन विचारण

किया जाना चाहिए, कायम रखे जाने योग्य नहीं है, इसके अतिरिक्त, अभिलेख पर उपलब्ध सभी साक्ष्य यह उपदर्शित करते हैं कि अभियुक्त ने हत्या के इरादे से पीड़ित पर वार किया और उसकी हत्या की, अतः, सेशन न्यायालय द्वारा पारित दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभियुक्त की दोषसिद्धि के निर्णय में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

वर्तमान मामले का निपटारा करने के लिए संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि नरपत सिंह, पुत्र श्री जालम सिंह ने तारीख 10 जुलाई, 2010 को सरकारी अस्पताल, बोरुण्डा, जिला जोधपुर में पुलिस थाना बिलारा के थाना प्रभारी को एक लिखित रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिसके माध्यम से, अन्य बातों के साथ, यह अभिकथन किया गया था कि मंगू सिंह, पुत्र श्री अमर सिंह (जो वर्तमान मामले का अपीलार्थी है) उक्त तारीख को दोपहर लगभग 2.45 बजे उसके घर आया और उसने उसके भाई महेन्द्र सिंह को घर के बाहर बुलाया । जैसे ही महेन्द्र सिंह घर के बाहर आया, तभी मंगू सिंह ने एक चाकू निकाला और उसने उक्त चाकू से महेन्द्र सिंह की छाती, पेट आदि पर हमला किया । जब महेन्द्र सिंह पीड़ा के कारण चिल्लाया तो नरपत सिंह, प्रथम इत्तिला रिपोर्टकर्ता और सवाई सिंह वहां पहुंचे और उन्होंने यह देखा कि महेन्द्र सिंह भूमि पर गिरा हुआ था और मंगू सिंह एक चाकू से उस पर हमला कर रहा था । नरपत सिंह, सवाई सिंह ने महेन्द्र सिंह को, मंगू सिंह द्वारा उस पर किए जा रहे क्रूर हमले से बचाने के लिए मामले में हस्तक्षेप किया जिसके उपरांत वर्तमान मामले का अपीलार्थी मंगू सिंह घटनास्थल से फरार हो गया । महेन्द्र सिंह को बोरुण्डा स्थित सरकारी अस्पताल ले जाया गया जहां डाक्टर ने उसे मृत घोषित किया । तदुपरांत, नरपत सिंह द्वारा उपरोक्त निबंधनों के अनुसार एक रिपोर्ट दर्ज कराई गई । आगे और पूछताछ किए जाने पर नरपत सिंह ने यह अभिकथन किया कि महेन्द्र सिंह और मंगू सिंह के बीच 'बाड़ा' के संबंध में एक विवाद चल रहा था जिसके कारण मंगू सिंह ने महेन्द्र सिंह की हत्या कर दी । ऊपर कथित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस थाना बिलारा में दंड संहिता की

धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 272/2010 दर्ज की गई और इस संबंध में अन्वेषण आरंभ किया गया । महेन्द्र सिंह के मृत शरीर का निरीक्षण किया गया और फर्द सूरतहाल लाश को तैयार किया गया । मृत शरीर का शव-परीक्षण सरकारी अस्पताल, बोरुण्डा में किया गया और उसके पश्चात् उक्त अस्पताल द्वारा शव-परीक्षण रिपोर्ट जारी की गई, जिसके अनुसार पीड़ित की दूसरी बाईं पसली में चाकू घोंपने का घाव पाया गया जो काफी गहरा था और वह छाती की गुहा में लगभग 12 सें. मी. तक अंदर चला गया था । उक्त चाकू घोंपने के घाव ने आंतरिक अंगों को क्षति पहुंचाई थी और उसके कारण मृतक महेन्द्र सिंह की मुख्य रक्त वाहिकाओं को भी क्षति कारित हुई थी जिसके कारण अधिक रक्तस्राव होने पर महेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई थी । घटनास्थल का निरीक्षण किया गया तथा स्थल निरीक्षण नक्शा तैयार किया गया । घटनास्थल से रक्त से सनी मिट्टी और मिट्टी के नमूने एकत्रित किए गए । मृतक महेन्द्र सिंह के रक्त से सने वस्त्रों को भी प्राप्त किया गया । अभियुक्त/अपीलार्थी को तारीख 12 जुलाई, 2010 को गिरफ्तार किया गया और घटना के समय उसके द्वारा पहने गए वस्त्रों को अभिग्रहण ज्ञापन के माध्यम से अभिगृहीत किया गया । मामले के अन्वेषण अधिकारी श्री भंवरलाल ने अभियुक्त से पूछताछ की । उक्त पूछताछ के दौरान अभियुक्त ने स्वैच्छिक रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन जानकारी प्रस्तुत की जिसके अनुसरण में अपराध करने हेतु प्रयुक्त हथियार, अर्थात् चाकू को अभिगृहीत किया गया । अभिगृहीत रक्त से सनी वस्तुओं और अन्य वस्तुओं को सीरम विज्ञानी परीक्षण हेतु न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जोधपुर भेजा गया और ऐसा करने में नमूनों को सुरक्षित रखने तथा उन्हें संप्रेषित किए जाने संबंधित समुचित प्रक्रिया का अनुपालन किया गया । न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जोधपुर से तारीख 31 अगस्त, 2010 को एक रिपोर्ट प्राप्त हुई, जिसके अनुसार सभी वस्तुओं पर 'ओ' रक्त समूह का रक्त पाया गया था । अन्वेषण को पूरा करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए एक आरोप पत्र

तैयार किया गया, जिसे सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया । विद्वान् लोक अभियोजक, विद्वान् प्रतिरक्षा काउंसेल और शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराया और उसके विरुद्ध उपरोक्तानुसार दंडादेश पारित किया । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेलों की दलीलों को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – नरपत सिंह प्रथम इत्तिला रिपोर्टकर्ता द्वारा मामले के संबंध में तुरंत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने के संबंध में कोई विवाद विद्यमान नहीं है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को घटना घटित होने के छह घंटे के भीतर दर्ज करा दिया गया था, जिसमें एक विनिर्दिष्ट आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी ने मृतक की छाती में चाकू घोंपा था जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई । इत्तिलाकर्ता नरपत सिंह ने अभि. सा. 2 के रूप में शपथ पर न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान पूर्णरूपेण अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन किया है । उसने पीड़ित की हत्या करने के लिए अपीलार्थी के हेतुक के ब्यौरे भी उपलब्ध कराए हैं और उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि दोनों पक्षकारों के बीच 'बाड़ा' से संबंधित एक विवाद चल रहा था जिसके कारण उपरोक्त घटना घटित हुई । प्रतिरक्षा काउंसेल ने नरपत सिंह की उपरोक्त पहलू के संबंध में कोई महत्वपूर्ण प्रतिपरीक्षा नहीं की और इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अपराध को करने के हेतुक संबंधी तथ्य को अपीलार्थी के विरुद्ध भली-भांति स्थापित किया गया है । नरपत सिंह ने वर्तमान मामले के अपीलार्थी के संबंध में यह विश्वसनीय और निर्णायक साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि उसने घटना की दुर्भाग्यपूर्ण दोपहर को 2.30 से 3.00 बजे के बीच महेन्द्र सिंह को घर से बाहर बुलाया था और पीड़ित के घर से बाहर आने के पश्चात् अभियुक्त/अपीलार्थी ने पीड़ित की छाती पर चाकू से वार किया था । नरपत

सिंह ने स्पष्ट किया है कि मंगू सिंह ने महेन्द्र सिंह की छाती में चाकू घोंपा था । अभियोजन के इस पक्षकथन के महत्वपूर्ण पहलू के संबंध में प्रतिरक्षा काउंसेल ने कोई गंभीर प्रतिवाद नहीं उठाया था । इसके अतिरिक्त, प्रतिपरीक्षा के दौरान भी कोई ऐसा महत्वपूर्ण तथ्य सामने नहीं आया था जो नरपत सिंह के चाक्षुष परिसाक्ष्य के साक्ष्य संबंधी मूल्य को कम कर सके । इस प्रकार, नरपत सिंह द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह तथ्य भली-भांति और सत्य रूप से स्थापित हो जाता है कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने मृतक महेन्द्र सिंह की छाती में चाकू घोंपा था । शव-परीक्षा रिपोर्ट के परिशीलन और डा. दिनेश कुमार द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय परिसाक्ष्य के परिशीलन से उच्च न्यायालय को सम्यक् रूप से यह विश्वास हो गया कि अभियोजन पक्ष ने यह साबित करने के लिए कि श्री महेन्द्र सिंह की मृत्यु उसकी छाती, जो निर्विवाद रूप से शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है, के बाएं भाग में चाकू घोंपने के कारण हुई है, विश्वसनीय साक्ष्य न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है । यह वार अत्यधिक बलपूर्वक किया गया था जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि उक्त वार के कारण छाती की गुहा में 12 सें. मी. गहरा घाव कारित हुआ । अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद चाकू, अभियुक्त द्वारा पहने हुए रक्त से सने वस्त्र, मृतक द्वारा घटना के समय पहने हुए रक्त से सने वस्त्र और साथ ही घटनास्थल से नमूने के रूप में एकत्रित की गई रक्त से सनी मिट्टी को सीरम विज्ञानी परीक्षा के लिए न्यायालयिक विज्ञान प्रयोग, जोधपुर भेजा गया था जहां से उनकी उक्त परीक्षा से संबंधित एक रिपोर्ट प्राप्त हुई जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 293 के अधीन एक स्वीकार्य साक्ष्य है और उसके माध्यम से यह तथ्य स्थापित हुआ कि इन चारों वस्तुओं पर 'ओ' समूहों का रक्त पाया गया था । अभियुक्त, उसके वस्त्रों पर इस प्रकार रक्त के धब्बे विद्यमान होने और साथ ही उसके निशानदेही पर बरामद किए गए चाकू तथा उस पर मृतक के रक्त के विद्यमान होने के संबंध में किसी प्रकार का कोई भी स्पष्टीकरण उपलब्ध कराने में असफल रहा है । अभियुक्त को इस प्रकार अपराध में फंसाने वाली बरामदगियों और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जोधपुर की रिपोर्ट, पूर्णरूपेण नरपत सिंह द्वारा प्रस्तुत परिसाक्ष्य की

अभिपुष्टि करते हैं । इस प्रकार, इस तथ्य को अकाट्य अभियोजन साक्ष्य के माध्यम से भली-भांति और सत्य रूप से स्थापित किया गया है कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने मृतक महेन्द्र सिंह पर चाकू से घातक वार किया था । श्री धीरेन्द्र सिंह, अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए इस प्रतिवाद कि यह मामला केवल एकमात्र चाकू के वार का है और इसलिए मामले को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादिष्ट करने के बजाय दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अधीन कार्यवाही किए जाने हेतु लिया जाना चाहिए, पर विचार किया गया किन्तु उसे नामंजूर कर दिया गया । नरपत सिंह द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से भली-भांति और सत्य रूप से यह तथ्य स्थापित हो जाता है कि अभियुक्त ने पीड़ित, जिसे अभियुक्त के संबंध में कोई शक-शुब्हा नहीं था, को उस दुर्भाग्यपूर्ण दोपहर को घर से बाहर बुलाया और जैसे ही पीड़ित व्यक्ति घर के द्वार से बाहर निकला अभियुक्त/अपीलार्थी ने उसकी छाती में चाकू घोंप दिया । अभियुक्त घटना के समय हथियार से लैस होकर पीड़ित के घर आया था और इसलिए यह प्रतीत होता है कि घटना को एक सोची-समझी सुनियोजित रीति में और पूरी तैयारी के साथ अंजाम दिया गया । अतः, यह स्पष्ट है कि किसी अभियुक्त द्वारा पीड़ित पर सोच-विचार करके किए गए हमले, जिसमें चाकू के घातक वार के कारण पीड़ित की मृत्यु हो गई, का न्यूनीकरण नहीं किया जा सकता । चाकू से आशयपूर्ण वार, जिसे अभियुक्त/अपीलार्थी द्वारा श्री महेन्द्र सिंह की छाती पर अपने संपूर्ण बल का प्रयोग करते हुए बिना किसी उत्प्रेरण के किया गया और जिसने मृतक की मुख्य रक्त वाहिका और फेफड़े को काट दिया और जिसके कारण मृतक को अत्यधिक रक्तस्राव हुआ और इस प्रकार उक्त वार घातक सिद्ध हुआ । इस प्रकार, ऐसी कोई न्यूनीकरण परिस्थितियां प्रतीत नहीं होती हैं, जो न्यायालय का यह समाधान कर सके कि अभियुक्त द्वारा किए अपराध को क्रूर और नृशंस हत्या के अलावा कोई अन्य नाम दिया जा सकता है । अपीलार्थी/अभियुक्त द्वारा पीड़ित के शरीर के मुख्य अंग, अर्थात् पीड़ित की छाती पर बलपूर्वक चाकू से वार करने का आशय केवल उसकी हत्या करना था । इसलिए, उच्च न्यायालय की दृढ़ राय यह है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का

मूल्यांकन न्यायोचित और उपयुक्त रीति में किया था और वह सही रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि अभियुक्त दोषी है और उसके द्वारा इस प्रभाव का तारीख 23 नवम्बर, 2011 का आक्षेपित निर्णय दिया गया था, जो किसी भी प्रकार की अविधिपूर्ण बात, दोष या पूर्वाग्रह से ग्रस्त प्रतीत नहीं होता है, जिसके कारण वर्तमान अपील के माध्यम से हमारा हस्तक्षेप अपेक्षित हो । अतः, अपील को, उसमें कोई गुण न होने के कारण खारिज किया जाता है । अभिलेख को तुरंत विचारण न्यायालय को लौटा दिया जाए । (पैरा 10, 11, 12, 13 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 465 :
विरसा सिंह बनाम **पंजाब राज्य** । 13

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की खंडपीठ दांडिक अपील सं. 57.

वर्तमान दांडिक अपील सिद्धदोष अपीलार्थी मंगू सिंह द्वारा फाइल की गई है और उक्त अपील के माध्यम से उसने 23 नवम्बर, 2011 को विद्वान् जिला और सत्र न्यायालय, जोधपुर जिला द्वारा सेशन मामला सं. 11/2011 में पारित निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी है ।

अपीलार्थी की ओर से श्री धीरेन्द्र सिंह, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री फरजंद अली, अपर महाधिवक्ता-सह-सरकारी अधिवक्ता और श्री बी. आर. बिश्नोई, एजीसी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संदीप मेहता ने दिया ।

न्या. मेहता – वर्तमान दांडिक अपील सिद्धदोष अपीलार्थी मंगू सिंह पुत्र श्री अमर सिंह द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 374(2) के अधीन फाइल की गई है और उक्त अपील के माध्यम

से उसने 23 नवम्बर, 2011 को विद्वान् जिला और सत्र न्यायालय, जोधपुर जिला द्वारा सेशन मामला सं. 11/2011 में पारित उस निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी है जिसके द्वारा अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराया गया था और उसे निम्नानुसार दंडादिष्ट किया गया था –

भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास का दंड और 5,000/- रुपए का जुर्माना । जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का साधारण कारावास ।

2. मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नानुसार हैं –

नरपत सिंह, पुत्र श्री जालम सिंह (अभि. सा. 2) ने तारीख 10 जुलाई, 2010 को सरकारी अस्पताल, बोरुण्डा, जिला जोधपुर में पुलिस थाना बिलारा के थाना प्रभारी को एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श पी/8) दर्ज कराई थी, जिसके माध्यम से, अन्य बातों के साथ, यह अभिकथन किया गया था कि मंगू सिंह, पुत्र श्री अमर सिंह (जो वर्तमान मामले का अपीलार्थी है) उक्त तारीख को दोपहर लगभग 2.45 बजे उसके घर आया और उसने उसके भाई महेन्द्र सिंह को घर के बाहर बुलाया । जैसे ही महेन्द्र सिंह घर के बाहर आया, तभी मंगू सिंह ने एक चाकू निकाला और उसने उक्त चाकू से महेन्द्र सिंह की छाती, पेट आदि पर हमला किया । जब महेन्द्र सिंह पीड़ा के कारण चिल्लाया तो नरपत सिंह, प्रथम इत्तिला रिपोर्टकर्ता और सवाई सिंह वहां पहुंचे और उन्होंने यह देखा कि महेन्द्र सिंह भूमि पर गिरा हुआ था और मंगू सिंह एक चाकू से उस पर हमला कर रहा था । नरपत सिंह (अभि. सा. 2) सवाई सिंह (अभि. सा. 7) ने महेन्द्र सिंह को, मंगू सिंह द्वारा उस पर किए जा रहे क्रूर हमले से बचाने के लिए मामले में हस्तक्षेप किया जिसके उपरांत वर्तमान मामले का अपीलार्थी मंगू सिंह घटनास्थल से फरार हो गया । महेन्द्र सिंह को बोरुण्डा स्थित सरकारी अस्पताल ले जाया गया जहां डाक्टर ने उसे मृत घोषित किया । तदुपरांत, नरपत सिंह (अभि. सा. 2) द्वारा उपरोक्त निबंधनों के अनुसार एक रिपोर्ट दर्ज कराई गई । आगे और

पूछताछ किए जाने पर नरपत सिंह ने यह अभिकथन किया कि महेन्द्र सिंह और मंगू सिंह के बीच 'बाड़ा' के संबंध में एक विवाद चल रहा था जिसके कारण मंगू सिंह ने महेन्द्र सिंह की हत्या कर दी ।

3. ऊपर कथित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस थाना बिलारा में दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 272/2010 (प्रदर्श पी/29) दर्ज की गई और इस संबंध में अन्वेषण आरंभ किया गया । महेन्द्र सिंह के मृत शरीर का निरीक्षण किया गया और फर्द सूरतहाल लाश (प्रदर्श पी/2) को तैयार किया गया । मृत शरीर का शव-परीक्षण सरकारी अस्पताल, बोरुण्डा में किया गया और उसके पश्चात् उक्त अस्पताल द्वारा शव-परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी/11) जारी की गई, जिसके अनुसार पीड़ित की दूसरी बाईं पसली में चाकू घोंपने का घाव पाया गया जो काफी गहरा था और वह छाती की गुहा में लगभग 12 सें. मी. तक अंदर चला गया था । उक्त चाकू घोंपने के घाव ने आंतरिक अंगों को क्षति पहुंचाई थी और उसके कारण मृतक महेन्द्र सिंह की मुख्य रक्त वाहिकाओं को भी क्षति कारित हुई थी जिसके कारण अधिक रक्तस्राव होने पर महेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई थी । घटनास्थल का निरीक्षण किया गया तथा स्थल निरीक्षण नक्शा (प्रदर्श पी/1) तैयार किया गया । घटनास्थल से रक्त से सनी मिट्टी और मिट्टी के नमूने एकत्रित किए गए और उन्हें क्रमश: अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी/5 और प्रदर्श पी/6 के माध्यम से अभिगृहीत किया गया । मृतक महेन्द्र सिंह के रक्त से सने वस्त्रों को भी प्राप्त किया गया तथा उन्हें अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी/7 के माध्यम से अभिगृहीत किया गया ।

4. अभियुक्त/अपीलार्थी को गिरफ्तारी ज्ञापन प्रदर्श पी/9 के माध्यम से तारीख 12 जुलाई, 2010 को गिरफ्तार किया गया और घटना के समय उसके द्वारा पहने गए वस्त्रों को अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी/10 के माध्यम से अभिगृहीत किया गया । मामले के अन्वेषण अधिकारी श्री भंवरलाल (अभि. सा. 13) ने अभियुक्त से पूछताछ की । उक्त पूछताछ के दौरान अभियुक्त ने स्वैच्छिक रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 27 के अधीन जानकारी (प्रदर्श पी/18)

प्रस्तुत की जिसके अनुसरण में अपराध करने हेतु प्रयुक्त हथियार, अर्थात् चाकू को अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी/14 के माध्यम से अभिगृहीत किया गया । अभिगृहीत रक्त से सनी वस्तुओं और अन्य वस्तुओं को सीरम विज्ञानी परीक्षण हेतु न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जोधपुर भेजा गया और ऐसा करने में नमूनों को सुरक्षित रखने तथा उन्हें संप्रेषित किए जाने संबंधित समुचित प्रक्रिया का अनुपालन किया गया । न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जोधपुर से तारीख 31 अगस्त, 2010 को एक रिपोर्ट (प्रदर्श पी/28) प्राप्त हुई, जिसके अनुसार वस्तु सं. 1 (रक्त से सनी मिट्टी), वस्तु सं. 2 (कमीज), वस्तु सं. 4 (मृतक की बनियान), वस्तु सं. 7 (अभियुक्त की टी-शर्ट) और वस्तु सं. 8 (अपराध करने में प्रयुक्त हथियार, चाकू) पर 'ओ' रक्त समूह का रक्त पाया गया था । अन्वेषण को पूरा करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए एक आरोप पत्र तैयार किया गया, जिसे सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया ।

5. चूंकि यह अपराध अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है इसलिए यह मामला सेशन न्यायालय, जोधपुर को सौंपा गया जहां तारीख 25 अक्तूबर, 2010 के आदेश द्वारा उक्त अपराध के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को विरचित किया गया । अभियुक्त ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण का दावा किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में 15 साक्षियों की परीक्षा की । अभियुक्त से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन पूछताछ की गई और जब उसे अभियोजन पक्ष द्वारा उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य से दर्शित होने वाली विपरीत परिस्थितियों से अवगत कराया गया तो उसने उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया और साथ ही उसने अपनी प्रतिरक्षा में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत न करने का विकल्प लिया । विद्वान् लोक अभियोजक, विद्वान् प्रतिरक्षा काउंसेल और शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय ने

अपीलार्थी को सिद्धदोष ठहराया और उसके विरुद्ध उपरोक्तानुसार दंडादेश पारित किया । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

6. अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री धीरेन्द्र सिंह, अधिवक्ता ने ऐसे साक्ष्य के विद्यमान होने के तथ्य का गंभीरता से विरोध नहीं किया है जो यह दर्शित करता है कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने मृतक महेन्द्र सिंह को चाकू घोंपा था । तथापि, उन्होंने निम्नलिखित प्रभाव के प्रतिवाद प्रस्तुत किए हैं :–

(1) अभियुक्त का ऐसा कोई आशय या हेतुक नहीं था कि वह मृतक महेन्द्र सिंह की हत्या करे ।

(2) यह मामला केवल चाकू से एकमात्र वार करने का है जिसके संबंध में पूर्व में कोई सोच-विचार नहीं किया गया था और इस प्रकार अपराध, यदि कोई हुआ हो, तो वह दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अंतर्गत आएगा ।

(3) अभियुक्त को स्वयं घटना के दौरान अनेक क्षतियां कारित हुई हैं जैसा कि ज्ञापन प्रदर्श पी/12 से दर्शित होता है, जिसके संबंध में कोई स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं कराया गया है और इस प्रकार अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए ।

7. उक्त प्रभाव की दलीलें प्रस्तुत करते हुए, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री धीरेन्द्र सिंह ने जोर-शोर से यह प्रतिवाद किया है कि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए वर्तमान मामले के अपीलार्थी की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता और इसके बजाय उक्त दोषसिद्धि को अंतरित करके दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अधीन दोषसिद्धि में संपरिवर्तित करना चाहिए । इस प्रकार, उन्होंने इस सीमा तक अपील को स्वीकार करने का अनुरोध किया है ।

8. इसके विपरीत, श्री फरजंद अली, विद्वान् अपर महा अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री बी. आर. बिश्नोई, एजीसी द्वारा की जा रही है, ने

जोर-शोर और दृढ़तापूर्वक अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों का विरोध किया है । उन्होंने यह आग्रह किया है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें दिन-दहाड़े वर्तमान मामले के अपीलार्थी ने चाकू से लैस होकर मासूम पीड़ित महेन्द्र सिंह, जिसके पास किसी किस्म का कोई हथियार मौजूद नहीं था, को उसके घर से बाहर बुलाकर अचानक उस पर हमला किया तथा उसकी छाती में चाकू से एक गहरा वार किया, जिसके परिणामस्वरूप पीड़ित के आंतरिक अंगों को क्षति कारित हुई और अत्यधिक रक्तस्राव के कारण पीड़ित की मृत्यु हो गई । उन्होंने यह भी दलील प्रस्तुत की है कि नरपत सिंह (अभि. सा. 2), प्रथम इत्तिला रिपोर्टकर्ता और सवाई सिंह (अभि. सा. 7) ने अभियोजन के पक्षकथन का पूर्णरूपेण समर्थन किया है और उन्होंने इस संबंध में अकाट्य साक्ष्य प्रस्तुत किया है जो अभियुक्त को मृतक महेन्द्र सिंह पर हमला करने वाले व्यक्ति के रूप में इस मामले में अंतर्वलित करता है । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त के रक्त से सने वस्त्रों की बरामदगी और उसकी निशानदेही पर अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी द्वारा रक्त से सने चाकू की बरामदगी, जिस पर विद्यमान रक्त मृतक के रक्त समूह (ओ+) से मेल खाता है, निर्णायक रूप से यह स्थापित करती है कि अभियुक्त उक्त अपराध में शामिल था । इसके पश्चात्, विद्वान् काउंसेलों द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई है कि ऐसे किसी मामले में, जिसमें पूर्व में पर्याप्त रूप से सोच-समझकर पीड़ित, जिसे हमला किए जाने के संबंध में कोई शक-शुब्हा नहीं था, के छाती जैसे महत्वपूर्ण अंग पर चाकू से वार किए जाने संबंधी मामले का न्यूनीकरण नहीं किया जा सकता और इसलिए आक्षेपित निर्णय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

9. हमने विद्वान् काउंसेलों द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और साथ ही अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का बारीकी से पुन: मूल्यांकन किया है ।

10. यह कथन करना पर्याप्त है कि नरपत सिंह (अभि. सा. 2), प्रथम इत्तिला रिपोर्टकर्ता द्वारा मामले के संबंध में तुरंत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

(प्रदर्श पी/8) दर्ज कराए जाने के संबंध में कोई विवाद विद्यमान नहीं है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को घटना घटित होने के छह घंटे के भीतर दर्ज करा दिया गया था, जिसमें एक विनिर्दिष्ट आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी ने मृतक की छाती में चाकू घोंपा था जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई । इत्तिलाकर्ता नरपत सिंह ने अभि. सा. 2 के रूप में शपथ पर न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान पूर्णरूपेण अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन किया है । उसने पीड़ित की हत्या करने के लिए अपीलार्थी के हेतुक के ब्यौरे भी उपलब्ध कराए हैं और उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि दोनों पक्षकारों के बीच 'बाड़ा' से संबंधित एक विवाद चल रहा था जिसके कारण उपरोक्त घटना घटित हुई । प्रतिरक्षा काउंसेल ने नरपत सिंह (अभि. सा. 2) की उपरोक्त पहलू के संबंध में कोई महत्वपूर्ण प्रतिपरीक्षा नहीं की और इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अपराध को करने के हेतुक संबंधी तथ्य को अपीलार्थी के विरुद्ध भली-भांति स्थापित किया गया है । नरपत सिंह ने वर्तमान मामले के अपीलार्थी के संबंध में यह विश्वसनीय और निर्णायक साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि उसने घटना की दुर्भाग्यपूर्ण दोपहर को 2.30 से 3.00 बजे के बीच महेन्द्र सिंह को घर से बाहर बुलाया था और पीड़ित के घर से बाहर आने के पश्चात् अभियुक्त/अपीलार्थी ने पीड़ित की छाती पर चाकू से वार किया था । नरपत सिंह ने स्पष्ट किया है कि मंगू सिंह ने महेन्द्र सिंह की छाती में चाकू घोंपा था । अभियोजन के इस पक्षकथन के महत्वपूर्ण पहलू के संबंध में प्रतिरक्षा काउंसेल ने कोई गंभीर प्रतिवाद नहीं उठाया था । इसके अतिरिक्त, प्रतिपरीक्षा के दौरान भी कोई ऐसा महत्वपूर्ण तथ्य सामने नहीं आया था जो नरपत सिंह के चाक्षुष परिसाक्ष्य के साक्ष्य संबंधी मूल्य को कम कर सके । इस प्रकार, नरपत सिंह द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह तथ्य भली-भांति और सत्य रूप से स्थापित हो जाता है कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने मृतक महेन्द्र सिंह की छाती में चाकू घोंपा था ।

11. महेन्द्र सिंह के मृत शरीर की शव-परीक्षा बोरुण्डा स्थित सरकारी अस्पताल में डा. दिनेश कुमार (अभि. सा. 10) द्वारा की गई । अभि. सा. 10 ने अपने साक्ष्य में इस संबंध में परिसाक्ष्य प्रस्तुत किया कि उसने मृतक की बाईं दूसरी पसली के नीचे 2×1/2 सें. मी. गहरा चाकू घोंपे जाने

का घाव पाया था । उक्त क्षति छाती की गुहा में 12 सें. मी. तक गहरी थी और उसने मुख्य रक्त वाहिका को काट दिया था और साथ ही उक्त वार के कारण दाहिने फेफड़े को भी क्षति आई थी जिसके कारण मृतक को अत्यधिक रक्तस्राव हुआ जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ । अभि. सा. 10 द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के इस पहलू के संबंध में प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं उठाए गए । अन्यथा भी, शव-परीक्षा रिपोर्ट के परिशीलन और डा. दिनेश कुमार (अभि. सा. 10) द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय परिसाक्ष्य के परिशीलन से हमें सम्यक् रूप से यह विश्वास हो गया है कि अभियोजन पक्ष ने यह साबित करने के लिए कि श्री महेन्द्र सिंह की मृत्यु उसकी छाती, जो निर्विवाद रूप से शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है, के बाएं भाग में चाकू घोंपने के कारण हुई है, विश्वसनीय साक्ष्य न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है । यह वार अत्यधिक बलपूर्वक किया गया था जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि उक्त वार के कारण छाती की गुहा में 12 सें. मी. गहरा घाव कारित हुआ ।

12. अभियुक्त/अपीलार्थी को तारीख 12 जुलाई, 2010 को गिरफ्तारी ज्ञापन प्रदर्श पी/9 के माध्यम से गिरफ्तार किया गया था । मामले के अन्वेषण अधिकारी भंवर लाल अभि. सा. 13 ने अभियुक्त से पूछताछ की, जिसने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन स्वैच्छिक जानकारी (प्रदर्श पी/18) प्रस्तुत की, जिसके परिणामस्वरूप अपराध में प्रयुक्त हथियार, अर्थात् चाकू जो रक्त से सना था, की बरामदगी संभव हो सकी । जब अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था तो उस समय वह रक्त से सने वस्त्र धारण किए हुए था जिन्हें अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी/10 के माध्यम से अभिगृहीत किया गया । अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद चाकू, अभियुक्त द्वारा पहने हुए रक्त से सने वस्त्र, मृतक द्वारा घटना के समय पहने हुए रक्त से सने वस्त्र और साथ ही घटनास्थल से नमूने के रूप में एकत्रित की गई रक्त से सनी मिट्टी को सीरम विज्ञानी परीक्षा के लिए न्यायालयिक विज्ञान प्रयोग, जोधपुर भेजा गया था जहां से उनकी उक्त परीक्षा से संबंधित एक रिपोर्ट (प्रदर्श पी/28) प्राप्त हुई जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 293 के अधीन एक स्वीकार्य साक्ष्य है और उसके माध्यम

से यह तथ्य स्थापित हुआ कि इन चारों वस्तुओं पर 'ओ' समूहों का रक्त पाया गया था । अभियुक्त, उसके वस्त्रों पर इस प्रकार रक्त के धब्बे विद्यमान होने और साथ ही उसके निशानदेही पर बरामद किए गए चाकू तथा उस पर मृतक के रक्त के विद्यमान होने के संबंध में किसी प्रकार का कोई भी स्पष्टीकरण उपलब्ध कराने में असफल रहा है । अभियुक्त को इस प्रकार अपराध में फंसाने वाली बरामदगियों और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जोधपुर की रिपोर्ट, पूर्णरूपेण नरपत सिंह (अभि. सा. 2) द्वारा प्रस्तुत परिसाक्ष्य की अभिपुष्टि करते हैं । इस प्रकार, इस तथ्य को अकाट्य अभियोजन साक्ष्य के माध्यम से भली-भांति और सत्य रूप से स्थापित किया गया है कि अभियुक्त/अपीलार्थी ने मृतक महेन्द्र सिंह पर चाकू से घातक वार किया था ।

13. श्री धीरेन्द्र सिंह, अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए इस प्रतिवाद कि यह मामला केवल एकमात्र चाकू के वार का है और इसलिए मामले को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादिष्ट करने के बजाय दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अधीन कार्यवाही किए जाने हेतु लिया जाना चाहिए, पर विचार किया गया किन्तु उसे ऊपर कथित कारणों से नामंजूर कर दिया गया । नरपत सिंह (अभि. सा. 2) द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से भली-भांति और सत्य रूप से यह तथ्य स्थापित हो जाता है कि अभियुक्त ने पीड़ित, जिसे अभियुक्त के संबंध में कोई शक-शुब्हा नहीं था, को उस दुर्भाग्यपूर्ण दोपहर को घर से बाहर बुलाया और जैसे ही पीड़ित व्यक्ति घर के द्वार से बाहर निकला अभियुक्त/अपीलार्थी ने उसकी छाती में चाकू घोंप दिया । अभियुक्त घटना के समय हथियार से लैस होकर पीड़ित के घर आया था और इसलिए यह प्रतीत होता है कि घटना को एक सोची-समझी सुनियोजित रीति में और पूरी तैयारी के साथ अंजाम दिया गया । अतः, यह स्पष्ट है कि किसी अभियुक्त द्वारा पीड़ित पर सोच-विचार करके किए गए हमले, जिसमें चाकू के घातक वार के कारण पीड़ित की मृत्यु हो गई, का न्यूनीकरण नहीं किया जा सकता । चाकू से आशयपूर्ण वार, जिसे अभियुक्त/अपीलार्थी द्वारा श्री महेन्द्र सिंह की छाती पर अपने संपूर्ण बल का प्रयोग करते हुए बिना किसी उत्प्रेरण के किया गया और जिसने मृतक

की मुख्य रक्त वाहिका और फेफड़े को काट दिया और जिसके कारण मृतक को अत्यधिक रक्तस्राव हुआ और इस प्रकार उक्त वार घातक सिद्ध हुआ । इस प्रकार, ऐसी कोई न्यूनीकरण परिस्थितियां प्रतीत नहीं होती हैं, जो न्यायालय का यह समाधान कर सके कि अभियुक्त द्वारा किए अपराध को क्रूर और नृशंस हत्या के अलावा कोई अन्य नाम दिया जा सकता है । अपीलार्थी/अभियुक्त द्वारा पीड़ित के शरीर के मुख्य अंग, अर्थात् पीड़ित की छाती पर बलपूर्वक चाकू से वार करने का आशय केवल उसकी हत्या करना था और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं । **विरसा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने मामले के इस पहलू पर विचार किया था और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था :–

> "2. अपीलार्थी के विरुद्ध अन्य पांच अभियुक्तों के साथ दंड संहिता की धारा 302/49, 324/149 और 323/149 के अधीन विचारण चलाया गया था । व्यक्तिगत रूप से उस पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप भी विरचित किए गए थे ।
>
> 3. अन्य अभियुक्तों को प्रथम न्यायालय द्वारा हत्या के आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था किन्तु उन पांच सह-अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 326, 324 और 323 के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया था ।
>
> 4. अपीलार्थी को प्रथम न्यायालय द्वारा दंड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया था और उसकी दोषसिद्धि तथा उसके विरुद्ध पारित दंडादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा भी की गई थी ।
>
> 5. मृतक खेम सिंह के शरीर पर केवल एक क्षति पाई गई थी और दोनों न्यायालय इस बात पर सहमत हैं कि अपीलार्थी ने उक्त क्षति कारित की है । उक्त क्षति एक भाले के वार के परिणामस्वरूप कारित हुई थी और डाक्टर जिसने उस समय खेम सिंह की चिकित्सा

---

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 465.

परीक्षा की थी जब वह जीवित था, ने भी इसी प्रभाव का कथन किया था जो निम्नानुसार है ।

6. "2×1/2" वेधित घाव, जो वंक्षण नलिका के ठीक ऊपर फूंफरे के नीचे के क्षेत्र में उदर की भित्ति के अनुप्रस्थ दिशा में ।

7. उसने यह भी कथन किया कि "आंत के तीन वल घाव से बाहर की ओर आ गए थे" ।

8. यह घटना तारीख 13 जुलाई, 1955 को रात्रि लगभग 8.00 बजे घटित हुई थी और खेम सिंह की मृत्यु अगले दिन सांय लगभग 5.00 बजे हुई थी ।

9. मृतक की शव-परीक्षा करने वाले डाक्टर ने क्षति को निम्नानुसार वर्णित किया है ।

10. 2½" का तिरछा छिन्न सिला हुआ घाव जो उदर के बाएं ओर निचले भाग पर पाया गया, वंक्षण नलिका के बाएं लिगामेंट के ऊपर 1¾" का घाव । यह क्षति उदर की भित्ति की पूरी मोटाई को चीर कर बनी थी । पैरिटोनिटिस विद्यमान था और गुहा में पचा हुआ खाद्य विद्यमान था । मवाद के गुच्छे छोटी आंत के आस-पास फैले थे और भिन्न-भिन्न स्थानों पर छह कट घाव थे और पचा हुआ खाद्य इन तीन कट घावों से बाहर की ओर बह रहा था ।"

11. डाक्टर ने यह कथन किया कि उक्त क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त थी ।

12. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह पाया कि अपीलार्थी की आयु 21 या 22 वर्ष थी और विद्वान् न्यायाधीश ने यह कथन किया कि –

> "जब किसी जमाव का समान उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि उक्त जमाव किसी व्यक्ति को केवल घोर उपहति कारित करने के लिए हुआ था तो मेरे मतानुसार, वास्तव में बिरसा सिंह का

आशय खेम सिंह की मृत्यु कारित करने का था किन्तु उसने उतावली रीति में और मूर्खतापूर्ण कार्य करते हुए वार करते समय अत्यधिक बल का प्रयोग किया जिसके कारण खेम सिंह की मृत्यु हो गई । पैरिटोनिटिस भी अतिरंजित हुई और जिसके कारण शीघ्र ही खेम सिंह की मृत्यु हो गई । यदि ऐसा नहीं हुआ होता तो शायद खेम सिंह आज जीवित होता या फिर वह कुछ समय और जीवित रह पाता ।"

13. इन तथ्यों के आधार पर उन्होंने यह कथन किया कि यह मामला दंड संहिता की धारा 300 के अंतर्गत आता है और इसलिए उन्होंने अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया ।

14. उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने इस तथ्य पर विचार किया "यह पूरी घटना अत्यधिक तेजी से घटित हुई थी और यह घटना अकस्मात् मुलाकात होने पर घटित हुई थी" । किन्तु उन्होंने इस निष्कर्ष को स्वीकार किया कि अपीलार्थी ने खेम सिंह को क्षति कारित की थी और इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि चिकित्सा संबंधी यह परिसाक्ष्य कि अपीलार्थी द्वारा खेम सिंह पर किया गया प्रहार घातक था, विश्वसनीय प्रतीत होता है ।

15. वाक्-चक्र से यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि ऊपर अधिकथित तथ्यों से यह प्रकट नहीं होता कि अभिकथित अपराध हत्या का अपराध है क्योंकि अभियोजन पक्ष ने यह साबित नहीं किया है कि अभियुक्त का आशय मृतक को ऐसी शारीरिक क्षति कारित करना था जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में उसकी मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो । तृतीयत: दंड संहिता की धारा 300 को कोट किया गया था "यदि ऐसा किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया जाता है और इस प्रकार कारित की जाने वाली शारीरिक क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में पीड़ित की मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त है" ।

16. यह भी कथन किया गया था कि उक्त धारा द्वारा अपेक्षित आशय न केवल कारित की गई शारीरिक क्षति से संबंधित होना चाहिए, अपितु उसे कारण से भी संबद्ध होना चाहिए "और कारित किए जाने के लिए आशयित शारीरिक क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त है" ।

17. इस प्रकार के मामलों में यह एक सर्वाधिक प्रयुक्त किए जाने वाला तर्क है किन्तु यह तर्क त्रुटिपूर्ण है । यदि ऐसी कोई क्षति कारित करने का आशय है जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने हेतु पर्याप्त हो, तो उस दशा में "तृतीयत:" आवश्यक नहीं होगा क्योंकि उक्त कार्य धारा के प्रथम भाग के अंतर्गत आएगा, अर्थात् –

> 'यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई है, मृत्यु कारित किए जाने के आशय से किया गया है ।'"

14. वर्तमान मामले के तथ्य भी आत्यंतिक रूप से उक्त मामले के समान हैं और इसलिए प्रतिरक्षा काउंसेल द्वारा प्रस्तुत यह तर्क कि अपराध को दंड संहिता की धारा 302 से, उसका अल्पीकरण करके उसे दंड संहिता की धारा 304 के भाग-1 के अधीन रखा जाना चाहिए, गुणविहीन है ।

15. जहां तक श्री धीरेन्द्र सिंह, अधिवक्ता, द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवाद का संबंध है कि स्वयं अभियुक्त को घटना के दौरान क्षतियां हुई थी और उनके संबंध में कोई स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं कराया गया है इसलिए अभियोजन का पक्षकथन संदेहास्पद हो जाता है, तो ऐसी स्थिति में अभियुक्त के शरीर पर, जब तारीख 12 जुलाई, 2010 को उसे गिरफ्तार किया गया था, पाई गई क्षतियों की प्रकृति पर विचार करना होगा । ये क्षतियां इस प्रकार थीं – (1) कंधे की हड्डी के बाईं ओर के क्षेत्र में चोट (2 × 1 सें. मी.), (2) बाएं कंधे पर चोट (3 × 2 सें. मी.), (3) छाती के बाईं ओर चोट, (4) बाएं हाथ की उंगलियों पर खरोंचें तथा (5) दाएं हाथ की उंगली पर खरोंचें । इस प्रकार ये सभी क्षतियां प्रकृति में सतही प्रतीत होती हैं और इसलिए उनके विद्यमान होने से ऐसा कोई निष्कर्ष सामने नहीं

आता है जिससे अभियोजन के पक्षकथन के संबंध में कोई संदेह उत्पन्न हो । इसके अतिरिक्त, जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी से प्रश्न किए गए थे तो उस प्रक्रम पर अभियुक्त ने ऐसा कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया था कि उसे उपरोक्त क्षतियां उसी घटना के दौरान कारित हुई थीं जिसमें महेन्द्र सिंह पर हमला किया गया था । इसलिए, अभियुक्त की गिरफ्तारी के समय उसके शरीर पर पाई गई अभिकथित सतही क्षतियों, जिनके संबंध में स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं कराया गया है, के कारण उसकी प्रतिरक्षा या अभियोजन के पक्षकथन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है ।

16. इसलिए, हमारी दृढ़ राय यह है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन न्यायोचित और उपयुक्त रीति में किया था और वह सही रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि अभियुक्त दोषी है और उसके द्वारा इस प्रभाव का तारीख 23 नवम्बर, 2011 का आक्षेपित निर्णय दिया गया था, जो किसी भी प्रकार की अविधिपूर्ण बात, दोष या पूर्वाग्रह से ग्रस्त प्रतीत नहीं होता है, जिसके कारण वर्तमान अपील के माध्यम से हमारा हस्तक्षेप अपेक्षित हो । अतः, अपील को, उसमें कोई गुण न होने के कारण खारिज किया जाता है । अभिलेख को तुरंत विचारण न्यायालय को लौटा दिया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

पु.

<u>संसद् के अधिनियम</u>

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008

(2009 का अधिनियम संख्यांक 4)

[7 जनवरी, 2009]

नागरिकों की उनके निकटतम स्थान पर न्याय तक पहुंच उपलब्ध कराने के प्रयोजनों के लिए ग्रामीण स्तर पर ग्राम न्यायालयों की स्थापना करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई नागरिक सामाजिक, आर्थिक या अन्य नि:शक्तता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित तो नहीं हो रहा है, और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य, नागालैंड राज्य, अरुणाचल प्रदेश राज्य, सिक्किम राज्य और जनजातीय क्षेत्रों के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में, "जनजातीय क्षेत्रों" पद से संविधान की छठी अनुसूची के पैरा 20 के नीचे सारणी के भाग 1, भाग 2, भाग 2क और भाग 3 में क्रमशः असम राज्य, मेघालय राज्य, त्रिपुरा राज्य और मिजोरम राज्य के विनिर्दिष्ट क्षेत्र अभिप्रेत हैं ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "ग्राम न्यायालय" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ख) "ग्राम पंचायत" से संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग्राम स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की कोई संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(ग) "उच्च न्यायालय" से अभिप्रेत है, –

(i) किसी राज्य के संबंध में, उस राज्य का उच्च न्यायालय ;

(ii) उस संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, जिसके लिए किसी राज्य के उच्च न्यायालय की अधिकारिता विधि द्वारा विस्तारित की गई है, वह उच्च न्यायालय ;

(iii) किसी अन्य संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, उस राज्यक्षेत्र के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय से भिन्न, दांडिक अपील का सर्वोच्च न्यायालय ;

(घ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है और "अधिसूचित" पद का तद्नुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ङ) "न्यायाधिकारी" से धारा 5 के अधीन नियुक्त ग्राम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी अभिप्रेत है ;

(च) "मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत" से संविधान के भाग 9 के उपबंधों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों के लिए संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन मध्यवर्ती स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ज) "अनुसूची" से इस अधिनियम से संलग्न अनुसूची अभिप्रेत है ;

(झ) संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में "राज्य सरकार" से संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ञ) उन शब्दों और पदों के जो, इसमें प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में परिभाषित हैं वही अर्थ होंगे, जो उन संहिताओं में हैं ।

अध्याय 2

ग्राम न्यायालय

3. ग्राम न्यायालयों की स्थापना – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम द्वारा ग्राम न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा, जिले में मध्यवर्ती स्तर पर प्रत्येक पंचायत या मध्यवर्ती स्तर पर निकटवर्ती पंचायतों के समूह के लिए या जहां किसी राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर कोई पंचायत नहीं है वहां निकटवर्ती ग्राम पंचायतों के समूह के लिए एक या अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र की स्थानीय सीमाएं विनिर्दिष्ट करेगी, जिस पर ग्राम न्यायालय की अधिकारिता विस्तारित की जाएगी और किसी भी समय, ऐसी सीमाओं को बढ़ा सकेगी, कम कर सकेगी या परिवर्तित कर सकेगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन स्थापित ग्राम न्यायालय तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन स्थापित न्यायालयों के अतिरिक्त होंगे ।

4. ग्राम न्यायालय का मुख्यालय – प्रत्येक ग्राम न्यायालय का मुख्यालय उस मध्यवर्ती पंचायत के मुख्यालय पर, जिसमें ग्राम न्यायालय स्थापित है या ऐसे अन्य स्थान पर अवस्थित होगा, जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

5. न्यायाधिकारी की नियुक्ति – राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के परामर्श से, प्रत्येक ग्राम न्यायालय के लिए एक न्यायाधिकारी की नियुक्ति करेगी ।

6. न्यायाधिकारी की नियुक्ति के लिए अर्हताएं – (1) कोई व्यक्ति न्यायाधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए तभी अर्हित होगा, जब वह प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र हो ।

(2) न्यायाधिकारी की नियुक्ति करते समय, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, स्त्रियों तथा ऐसे अन्य वर्गों या समुदायों के सदस्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाएगा, जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

7. न्यायाधिकारी का वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें – न्यायाधिकारी को संदेय वेतन और अन्य भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को लागू हों ।

8. न्यायाधिकारी का उन कार्यवाहियों में पीठासीन न होना, जिनमें वह हितबद्ध है – न्यायाधिकारी ग्राम न्यायालय की उन कार्यवाहियों में पीठासीन नहीं होगा जिनमें उसका कोई हित है या वह विवाद की विषय-वस्तु में अन्यथा अंतर्वलित है या उसका ऐसी कार्यवाहियों के किसी पक्षकार से संबंध है और ऐसे मामले में न्यायाधिकारी मामले को, किसी अन्य न्यायाधिकारी को अंतरित किए जाने के लिए, यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय को भेजेगा ।

9. न्यायाधिकारी का ग्रामों में चल न्यायालय लगाना और कार्यवाहियां करना – (1) न्यायाधिकारी अपनी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले ग्रामों का आवधिक रूप से दौरा करेगा और ऐसे किसी स्थान पर विचारण या कार्यवाहियां करेगा, जिसे वह उस स्थान के निकट समझता है जहां पक्षकार सामान्यतया निवास करते हैं या जहां संपूर्ण वाद हेतुक या उसका कोई भाग उद्भूत हुआ था :

परन्तु जहां ग्राम न्यायालय अपने मुख्यालय से बाहर चल न्यायालय लगाने का विनिश्चय करता है वहां वह उस तारीख और स्थान के बारे में, जहां वह चल न्यायालय लगाने का प्रस्ताव करता है, व्यापक प्रचार करेगा ।

(2) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को सभी सुविधाएं प्रदान करेगी

जिनके अंतर्गत उसके मुख्यालय से बाहर विचारण या कार्यवाहियां करते समय न्यायाधिकारी द्वारा चल न्यायालय लगाने के लिए वाहनों की व्यवस्था भी है ।

10. ग्राम न्यायालय की मुद्रा – इस अधिनियम के अधीन स्थापित प्रत्येक ग्राम न्यायालय, न्यायालय की मुद्रा का उपयोग ऐसे आकार और विमाओं में करेगा जो उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार के अनुमोदन से विहित की जाएं ।

अध्याय 3

ग्राम न्यायालय की अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार

11. ग्राम न्यायालय की अधिकारिता – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय सिविल और दांडिक, दोनों अधिकारिता का प्रयोग इस अधिनियम के अधीन उपबंधित रीति में और सीमा तक करेगा ।

12. दांडिक अधिकारिता – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय किसी परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा और –

(क) पहली अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा ; और

(ख) उस अनुसूची के भाग 2 में सम्मिलित अधिनियमितियों के अधीन विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा और अनुतोष, यदि कोई हो, प्रदान करेगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ग्राम न्यायालय उन राज्य अधिनियमों के अधीन ऐसे सभी अपराधों का भी विचारण करेगा या ऐसा अनुतोष प्रदान करेगा, जो धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

13. सिविल अधिकारिता – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के

होते हुए भी और उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय की निम्नलिखित अधिकारिता होगी, –

(क) दूसरी अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट वर्गों के विवादों के अधीन आने वाले सिविल प्रकृति के सभी वादों या कार्यवाहियों का विचारण करना ;

(ख) उन सभी वर्गों के दावों और विवादों का विचारण करना, जो धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा और उक्त धारा की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

(2) ग्राम न्यायालय की धनीय सीमाएं वे होंगी, जो उच्च न्यायालय द्वारा, राज्य सरकार के परामर्श से समय-समय पर अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट की जाएं ।

14. अनुसूचियों का संशोधन करने की शक्ति – (1) जहां केन्द्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, वहां वह अधिसूचना द्वारा, यथास्थिति, पहली अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 अथवा दूसरी अनुसूची के भाग 2 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे लोप कर सकेगी और वह तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

(3) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह उच्च न्यायालय के परामर्श से अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची के भाग 3 या दूसरी अनुसूची के भाग 3 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे किसी ऐसी मद का लोप कर सकेगी, जिसकी बाबत राज्य विधान-मंडल विधियां बनाने के लिए सक्षम है और तदुपरि, यथास्थिति, पहली अनुसूची या दूसरी अनुसूची तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(4) उपधारा (3) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी ।

15. परिसीमा – (1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय वादों को लागू होंगे ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 36 के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराधों के संबंध में लागू होंगे ।

16. लंबित कार्यवाहियों का अंतरण – (1) यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसी तारीख से, जो उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचित की जाए, अपने अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष लंबित सभी सिविल या दांडिक मामलों को, ऐसे मामलों का विचारण या निपटारा करने के लिए सक्षम ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने विवेकानुसार उन मामलों का या तो पुनःविचारण कर सकेगा या उन पर उस प्रक्रम से आगे कार्यवाही कर सकेगा, जिस पर वे उसे अंतरित किए गए थे ।

17. अनुसचिवीय अधिकारियों के कर्तव्य – (1) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की प्रकृति और प्रवर्गों का अवधारण करेगी और ग्राम न्यायालय को उतने अधिकारी और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जितने वह ठीक समझे ।

(2) ग्राम न्यायालय के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(3) ग्राम न्यायालय के अधिकारी और अन्य कर्मचारी ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जो, समय-समय पर, न्यायाधिकारी द्वारा उन्हें समनुदेशित किए जाएं ।

अध्याय 4

दांडिक मामलों में प्रक्रिया

18. दांडिक विचारण में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय संहिता

के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय समझा जाएगा ।

19. ग्राम न्यायालय द्वारा संक्षिप्त विचारण प्रक्रिया का अपनाया जाना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 260 की उपधारा (1) या धारा 262 की उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय अपराधों का विचारण उक्त संहिता के अध्याय 21 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार संक्षिप्त रूप में करेगा और उक्त संहिता की धारा 262 की उपधारा (1) तथा धारा 263 से धारा 265 के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे विचारण को लागू होंगे ।

(2) जब संक्षिप्त विचारण के दौरान न्यायाधिकारी को यह प्रतीत हो कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि उसका संक्षिप्त विचारण करना अवांछनीय है तो न्यायाधिकारी ऐसे किसी साक्षी को पुनः बुलाएगा, जिसकी परीक्षा हो चुकी हो और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन उपबंधित रीति में मामले की पुनः सुनवाई के लिए अग्रसर होगा ।

20. ग्राम न्यायालय के समक्ष सौदा अभिवाक् – अपराध में अभियुक्त व्यक्ति उस ग्राम न्यायालय में, जिसमें ऐसे अपराध का विचारण लंबित है, सौदा अभिवाक् के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा और ग्राम न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 21क के उपबंधों के अनुसार मामले का निपटारा करेगा ।

21. ग्राम न्यायालय में मामलों का संचालन और पक्षकारों को विधिक सहायता – (1) सरकार की ओर से ग्राम न्यायालय में दांडिक मामलों का संचालन करने के प्रयोजन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 25 के उपबंध लागू होंगे ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के समक्ष दांडिक कार्यवाही में परिवादी अभियोजन के मामले को प्रस्तुत करने के लिए ग्राम न्यायालय की इजाजत से अपने खर्चे पर अपनी पसंद के किसी अधिवक्ता को नियुक्त कर सकेगा ।

(3) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 6 के अधीन गठित राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अधिवक्ताओं का एक पैनल तैयार करेगा और उनमें से कम-से-कम दो को प्रत्येक ग्राम न्यायालय के साथ लगाए जाने के लिए समनुदेशित करेगा जिससे कि ग्राम न्यायालय द्वारा उनकी सेवाएं अधिवक्ता की नियुक्ति करने में असमर्थ रहने वाले अभियुक्त को उपलब्ध कराई जा सकें ।

22. निर्णय का सुनाया जाना – (1) प्रत्येक विचारण में निर्णय, न्यायाधिकारी द्वारा विचारण के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को तत्काल नि:शुल्क प्रदान करेगा ।

अध्याय 5

सिविल मामलों में प्रक्रिया

23. सिविल कार्यवाहियों में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

24. सिविल विवादों में विशेष प्रक्रिया – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक वाद, दावा या विवाद ग्राम न्यायालय में ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में और एक सौ रुपए से अनधिक की ऐसी फीस के साथ, जो उच्च न्यायालय द्वारा, समय-समय पर, राज्य सरकार के परामर्श से विहित की जाए, आवेदन करके संस्थित किया जाएगा ।

(2) जहां कोई वाद, दावा या विवाद सम्यक् रूप से संस्थित किया

गया है, वहां ग्राम न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन की प्रति के साथ विरोधी पक्षकार को ऐसी तारीख तक, जो समनों में विनिर्दिष्ट की जाए, हाजिर होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन जारी किए जाएंगे और उनकी तामील ऐसी रीति में की जाएगी जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(3) विरोधी पक्षकार द्वारा अपना लिखित कथन फाइल कर दिए जाने के पश्चात्, ग्राम न्यायालय सुनवाई के लिए तारीख नियत करेगा और सभी पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से हाजिर होने की सूचना देगा ।

(4) सुनवाई के लिए नियत तारीख को ग्राम न्यायालय दोनों पक्षकारों की उनके अपने-अपने प्रतिविरोधों के संबंध में सुनवाई करेगा और जहां विवाद में कोई साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित नहीं है वहां निर्णय सुनाएगा और ऐसे मामले में जहां साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित है वहां ग्राम न्यायालय आगे कार्यवाही करेगा ।

(5) ग्राम न्यायालय को निम्नलिखित की शक्ति भी होगी, –

(क) व्यतिक्रम के लिए किसी मामले को खारिज करना या एकपक्षीय कार्यवाही करना ; और

(ख) व्यतिक्रम के लिए खारिजी के ऐसे किसी आदेश या मामले की एकपक्षीय सुनवाई के लिए उसके द्वारा पारित किसी आदेश को अपास्त करना ।

(6) किसी ऐसे आनुषंगिक विषय के संबंध में, जो कार्यवाहियों के दौरान उत्पन्न हो, ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो वह न्याय के हित में न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे ।

(7) कार्यवाहियां, जहां तक व्यवहार्य हों, न्याय के हितों से संगत होंगी और सुनवाई दिन-प्रतिदिन के आधार पर उसके निष्कर्ष तक जारी रहेगी, जब तक कि ग्राम न्यायालय ऐसे कारणों से, जिन्हें लेखबद्ध किया जाएगा, सुनवाई को अगले दिन से परे स्थगित करना आवश्यक नहीं पाता ।

(8) ग्राम न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन का

निपटारा उसके संस्थित किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर करेगा ।

(9) प्रत्येक वाद, दावे या विवाद में निर्णय ग्राम न्यायालय द्वारा सुनवाई के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(10) निर्णय में मामले का संक्षिप्त विवरण, अवधारण के लिए प्रश्न, उस पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के कारण अंतर्विष्ट होंगे ।

(11) निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को निर्णय सुनाए जाने की तारीख से तीन दिन के भीतर निःशुल्क परिदान की जाएगी ।

25. ग्राम न्यायालय की डिक्रियों और आदेशों का निष्पादन – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एक डिक्री समझा जाएगा और उसका निष्पादन ग्राम न्यायालय द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में किया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी ।

(2) ग्राम न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में यथा उपबंधित किसी डिक्री के निष्पादन के संबंध में प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा और वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से मार्गदर्शित होगा ।

(3) डिक्री का निष्पादन या तो उस ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसने उसे पारित किया है या ऐसे किसी अन्य ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसे निष्पादन के लिए वह भेजी गई है, किया जा सकेगा ।

26. सिविल विवादों के सुलह और समझौते के लिए प्रयास करने का ग्राम न्यायालय का कर्तव्य – (1) प्रत्येक वाद या कार्यवाही में ग्राम न्यायालय द्वारा प्रथम अवसर पर यह प्रयास किया जाएगा कि जहां मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत ऐसा करना संभव हो, वहां वह वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु के संबंध में किसी समझौते पर पहुंचने में पक्षकारों की सहायता करे, उन्हें मनाए और उनमें सुलह कराए और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(2) जहां किसी वाद या कार्यवाही में किसी प्रक्रम पर ग्राम न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच समझौते की युक्तियुक्त संभावना है वहां ग्राम न्यायालय कार्यवाहियों को ऐसी अवधि के लिए स्थगित कर सकेगा जिसे वह ऐसा समझौता करने का प्रयास करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए ठीक समझे ।

(3) जहां उपधारा (2) के अधीन किसी कार्यवाही को स्थगित किया जाता है वहां ग्राम न्यायालय, अपने विवेकानुसार, पक्षकारों के बीच समझौता कराने के लिए मामले को एक या अधिक सुलहकारों को निर्देशित कर सकेगा ।

(4) उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्ति कार्यवाहियों को स्थगित करने की ग्राम न्यायालय की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त होगी, न कि उसके अल्पीकरण में ।

27. सुलहकारों की नियुक्ति – (1) धारा 26 के प्रयोजनों के लिए, जिला न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट के परामर्श से, सुलहकारों के रूप में नियुक्ति के लिए ग्राम स्तर पर सत्यनिष्ठा रखने वाले ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के नामों का एक पैनल तैयार करेगा, जिसके पास ऐसी अर्हताएं और अनुभव हों, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित किए जाएं ।

(2) सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

28. सिविल विवादों का अंतरण – अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय, किसी पक्षकार द्वारा किए गए आवेदन पर या जब किसी एक ग्राम न्यायालय के पास काफी मामले लंबित हों या जब कभी वह न्याय के हित में ऐसा आवश्यक समझे, किसी ग्राम न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को अपनी अधिकारिता के भीतर किसी अन्य ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

अध्याय 6

साधारणतः प्रक्रिया

29. कार्यवाहियों का राज्य की राजभाषा में होना – ग्राम न्यायालय

के समक्ष कार्यवाहियां और उसका निर्णय, जहां तक व्यवहार्य हो, अंग्रेजी भाषा से भिन्न राज्य की राजभाषाओं में से किसी एक में होंगे ।

30. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का लागू होना – ग्राम न्यायालय साक्ष्य के रूप में ऐसी किसी रिपोर्ट, कथन, दस्तावेज, सूचना या विषय को ग्रहण कर सकेगा जो, उसकी राय में, किसी विवाद को प्रभावी रूप से निपटाने में उसकी सहायता करता हो, चाहे वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) के अधीन अन्यथा सुसंगत या ग्राह्य हो या नहीं ।

31. मौखिक साक्ष्य का लेखबद्ध किया जाना – ग्राम न्यायालय के समक्ष वादों या कार्यवाहियों में साक्षियों के साक्ष्य को विस्तार से लेखबद्ध करना आवश्यक नहीं होगा, किंतु न्यायाधिकारी, जैसे ही प्रत्येक साक्षी की परीक्षा अग्रसर होती है, साक्षी द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य के सार का ज्ञापन लेखबद्ध करेगा या लेखबद्ध कराएगा और ऐसे ज्ञापन पर साक्षी और न्यायाधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे तथा वह अभिलेख का भाग बनेगा ।

32. औपचारिक प्रकृति के साक्ष्य का शपथ-पत्र पर होना – (1) किसी व्यक्ति का साक्ष्य, जहां ऐसा साक्ष्य औपचारिक प्रकृति का है, शपथ-पत्र द्वारा दिया जा सकेगा और सभी न्यायसंगत अपवादों के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के समक्ष किसी वाद या कार्यवाही में साक्ष्य में पढ़ा जा सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, वाद या कार्यवाही में किसी पक्षकार के आवेदन पर ऐसे किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और उसके शपथ-पत्र में अंतर्विष्ट तथ्यों के बारे में उसकी परीक्षा करेगा ।

अध्याय 7

अपीलें

33. दांडिक मामलों में अपील – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध कोई अपील इसमें यथा उपबंधित के सिवाय नहीं होगी ।

(2) कोई अपील उस दशा में नहीं होगी जहां, –

(क) अभियुक्त व्यक्ति ने दोषी होने का अभिवाक् किया है और उसे उस अभिवाक् पर दोषसिद्ध किया गया है ;

(ख) ग्राम न्यायालय ने केवल एक हजार रुपए से अनधिक के जुर्माने का दंडादेश पारित किया है ।

(3) उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के किसी अन्य निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध अपील सेशन न्यायालय को होगी ।

(4) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर होगी :

परंतु यदि सेशन न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(5) उपधारा (3) के अधीन की गई अपील की सेशन न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(6) सेशन न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान, उस दंडादेश या आदेश के निलंबन का निदेश दे सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(7) उपधारा (5) के अधीन सेशन न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और सेशन न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

34. सिविल मामलों में अपील – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी और

उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या ऐसे आदेश से, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील जिला न्यायालय को होगी ।

(2) ग्राम न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील, –

(क) पक्षकारों की सहमति से नहीं होगी ;

(ख) जहां किसी वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य एक हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां नहीं होगी ;

(ग) जहां ऐसे वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य पांच हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां विधि के किसी प्रश्न के सिवाय नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परंतु यदि जिला न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन की गई अपील की जिला न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(5) जिला न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान उस निर्णय या आदेश के निष्पादन पर रोक लगा सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(6) उपधारा (4) के अधीन जिला न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और जिला न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

अध्याय 8

प्रकीर्ण

35. ग्राम न्यायालयों को पुलिस की सहायता – (1) ग्राम न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर कार्यरत प्रत्येक पुलिस अधिकारी ग्राम न्यायालय की उसके विधिपूर्ण प्राधिकार के प्रयोग में सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

(2) जब कभी ग्राम न्यायालय, अपने कृत्यों के निर्वहन में, किसी राजस्व अधिकारी या पुलिस अधिकारी या सरकारी सेवक को ग्राम न्यायालय की सहायता करने का निदेश देगा तब वह ऐसी सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

36. न्यायाधिकारियों और कर्मचारियों आदि का लोक सेवक होना – न्यायाधिकारियों और ग्राम न्यायालयों के अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के बारे में, जब वे इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में कार्य कर रहे हैं या उनका कार्य करना तात्पर्यित है, यह समझा जाएगा कि वे भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक हैं ।

37. ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण – उच्च न्यायालय, न्यायाधिकारी की पंक्ति से वरिष्ठ किसी न्यायिक अधिकारी को प्रत्येक छह मास में एक बार या ऐसी अन्य अवधि में, जो उच्च न्यायालय विहित करे, अपनी अधिकारिता के भीतर ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण करने और ऐसे अनुदेश जारी करने के लिए, जो वह आवश्यक समझे, तथा उच्च न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

38. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उसे कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन कोई भी आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, उसके किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

39. उच्च न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति – (1) उच्च न्यायालय, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 10 के अधीन ग्राम न्यायालय की मुद्रा का आकार और विमाएं ;

(ख) धारा 24 की उपधारा (1) के अधीन वाद, दावा या कार्यवाही संस्थित किए जाने के लिए प्ररूप, रीति और फीस ;

(ग) धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन विरोधी पक्षकार पर तामील की रीति ;

(घ) धारा 26 की उपधारा (1) के अधीन सुलह के लिए प्रक्रिया ;

(ङ) धारा 27 की उपधारा (1) के अधीन सुलहकारों की अर्हताएं और अनुभव ;

(च) धारा 37 के अधीन ग्राम न्यायालय के निरीक्षण के लिए अवधि ।

(3) उच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी ।

40. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 17 की उपधारा (2) के अधीन ग्राम न्यायालयों के

अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 27 की उपधारा (2) के अधीन सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

पहली अनुसूची

(धारा 12 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन अपराध, आदि

(i) ऐसे अपराध जो मृत्युदंड, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय नहीं है ;

(ii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379, धारा 380 या धारा 381 के अधीन चोरी, जहां चुराई गई संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 411 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को प्राप्त करना या प्रतिधारित करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iv) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 414 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को छुपाने या उसके व्ययन में सहायता करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 454 और धारा 456 के अधीन अपराध ;

(vi) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 504 के अधीन शांति भंग कराने को प्रकोपित करने के आशय से अपमान और धारा

506 के अधीन ऐसी अवधि के, जो दो वर्ष तक की हो सकेगी, कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय आपराधिक अभित्रास ;

(vii) पूर्वोक्त अपराधों में से किसी का दुष्प्रेरण ;

(viii) पूर्वोक्त अपराधों में से कोई अपराध करने का प्रयत्न, जब ऐसा प्रयत्न अपराध हो ।

भाग 2

अन्य केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(i) ऐसे किसी कार्य द्वारा गठित कोई अपराध, जिसकी बाबत पशु अतिचार अधिनियम, 1871 (1871 का 1) की धारा 20 के अधीन परिवाद किया जा सकेगा ;

(ii) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) ;

(iii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) ;

(iv) सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) ;

(v) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पत्नियों, बालकों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश ;

(vi) बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 (1976 का 19) ;

(vii) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (1976 का 25) ;

(viii) घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) ।

भाग 3

राज्य अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

दूसरी अनुसूची

(धारा 13 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

ग्राम न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर सिविल प्रकृति के वाद

(i) **सिविल विवाद** :

(क) संपत्ति क्रय करने का अधिकार ;

(ख) सामान्य चरागाहों का उपयोग ;

(ग) सिंचाई सरणियों से जल लेने का विनियमन और समय ;

(ii) **संपत्ति विवाद** :

(क) ग्राम और फार्म हाउस (कब्जा) ;

(ख) जलसरणियां ;

(ग) कुएं या नलकूप से जल लेने का अधिकार ;

(iii) **अन्य विवाद :**

(क) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) के अधीन दावे ;

(ख) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) के अधीन दावे ;

(ग) व्यापार संव्यवहार या साहूकारी से उद्भूत धन संबंधी वाद ;

(घ) भूमि पर खेती में भागीदारी से उद्भूत विवाद ;

(ङ) ग्राम पंचायतों के निवासियों द्वारा वन उपज के उपयोग के संबंध में विवाद ।

भाग 2

केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

भाग 3

राज्य सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित राज्य अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास – (103वां संविधान संशोधन तक) – श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व – डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 47259/88

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in